ISSN No. 2582-9548

nbt.india
एकः सूते सकलम्

पुस्तक संस्कृति

साहित्य और संस्कृति की द्विमासिकी

वर्ष - 10 ◆ अंक - 4 ◆ जुलाई - अगस्त 2025 ◆ मूल्य ₹40.00

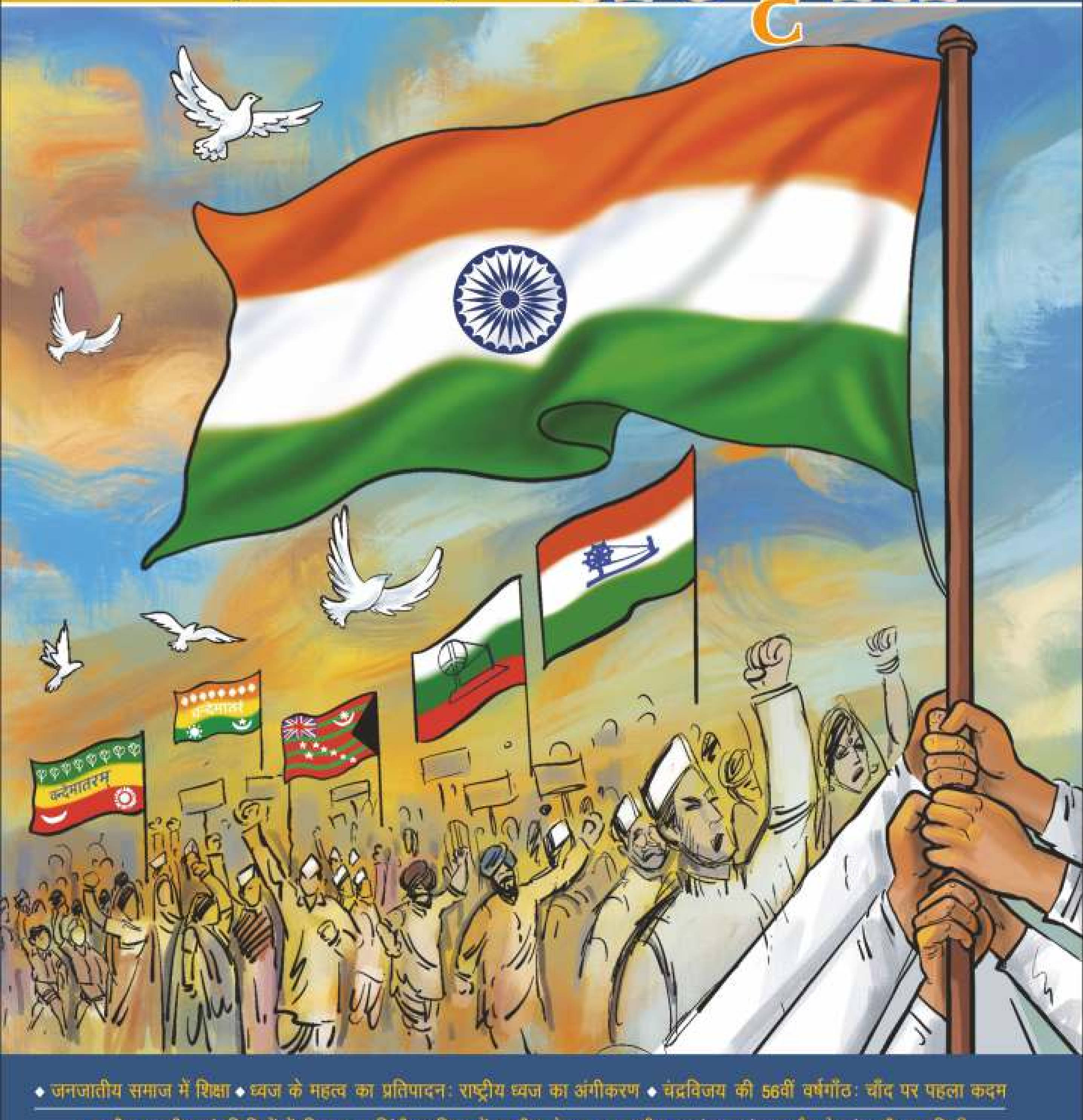

◆ जनजातीय समाज में शिक्षा ◆ ध्वज के महत्व का प्रतिपादन: राष्ट्रीय ध्वज का अंगीकरण ◆ चंद्रविजय की 56वीं वर्षगाँठ: चाँद पर पहला कदम

◆ प्राचीन भारतीय पांडुलिपियों में विज्ञान ◆ सिंधी साहित्य में राष्ट्रीय चेतना ◆ भारतीय स्वतंत्रता संग्राम और प्रेमचंद की कहानियाँ

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत द्वारा

वर्ष 2025–26 में आयोजित किए जाने वाले पुस्तक मेले

चिनार पुस्तक महोत्सव, जम्मू कश्मीर
2 से 10 अगस्त 2025

गोमती पुस्तक महोत्सव, लखनऊ
20 से 28 सितंबर 2025

मुंबई पुस्तक महोत्सव, महाराष्ट्र
8 से 12 अक्तूबर 2025

गोरखपुर पुस्तक महोत्सव, उत्तर प्रदेश
1 से 9 नवंबर 2025

नागपुर पुस्तक मेला, महाराष्ट्र
22 से 30 नवंबर 2025

पुणे पुस्तक महोत्सव, महाराष्ट्र
13 से 21 दिसंबर 2025

नई दिल्ली विश्व पुस्तक मेला
10 से 18 जनवरी 2026

संबलपुर पुस्तक मेला, ओडिशा
24 जनवरी से 1 फरवरी 2026

nbt.india
एकः सूते सकलम्

मुख्यालय
राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत
5 इंस्टीट्यूशनल एरिया, वसंत कुंज, नई दिल्ली - 110070
वेबसाइटः www.nbtindia.gov.in

प्रधान संपादक
प्रो. मिलिंद सुधाकर मराठे

संपादक
दीपक कुमार गुप्ता

संपादकीय सहयोग
अल्पना भसीन, विजयलक्ष्मी पाण्डेय

विज्ञापन एवं प्रसार
जनसंपर्क अनुभाग

उत्पादन
अनुज कुमार भारती, पवन दुबे

चित्रांकन
इरशाद कप्तान

सज्जा/डिजाइन
ऋतुराज शर्मा, समरेश चटर्जी

सदस्यता शुल्क
व्यक्तियों के लिए
एक प्रति : ₹ 40.00
वार्षिक : ₹ 225.00
(शुल्क भारत के लिए मान्य)

संपादकीय पत्र-व्यवहार
संपादक
पुस्तक संस्कृति
राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत
पता : 5 इंस्टीट्यूशनल एरिया,
वसंत कुंज, नई दिल्ली-110070
फोन : 011-26707876
ई-मेलः editorpustaksanskriti@gmail.com

प्रकाशक व मुद्रक अनुज कुमार भारती द्वारा नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया (राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत) 5 इंस्टीट्यूशनल एरिया, वसंत कुंज, नई दिल्ली-110070 के लिए प्रकाशित और सालासर इमेजिंग सिस्टम्स, ए-97, सेक्टर-58, नोएडा-201301 (उत्तर प्रदेश) से मुद्रित।

संपादक
दीपक कुमार गुप्ता
सर्वाधिकार सुरक्षित : प्रकाशित सामग्री के उपयोग के लिए लेखक और प्रकाशक की अनुमति आवश्यक है। प्रकाशित रचनाओं के विचार से प्रकाशक का सहमत होना आवश्यक नहीं है। राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत से संबंधित सभी विवादास्पद मामले केवल दिल्ली न्यायालय के अधीन होंगे।

ISSN NO. 2582–9548

पुस्तक संस्कृति

साहित्य एवं संस्कृति की द्विमासिकी
वर्ष-10; अंक-4; जुलाई-अगस्त, 2025

इस अंक में

संपादकीय — *प्रो. मिलिंद सुधाकर मराठे* — 2
शिक्षा — **जनजातीय समाज में शिक्षा**—*जगमोहन सिंह राजपूत* — 3
राष्ट्रध्वज — **ध्वज के महत्व का प्रतिपादन : राष्ट्रीय ध्वज का अंगीकरण** —*लक्ष्मीनारायण भाला 'लक्खी दा'* — 7
विज्ञान — **चंद्रविजय की 56वीं वर्षगाँठ : चाँद पर पहला कदम** —*देवेंद्र मेवाड़ी* — 11
हस्तशिल्प — **भारत में हस्तशिल्प : कला भी, आजीविका भी** —*यशवन्त कोठारी* — 15
स्त्री-विमर्श — **महिलाओं के अधिकार और लैंगिक समानता**—*मंजरी जोशी* — 18
ज्ञान परंपरा — **प्राचीन भारतीय पांडुलिपियों में विज्ञान**—*प्रमोद भार्गव* — 21
व्यक्तित्व — **विलक्षण प्रतिभा के संत स्वामी हरिदास**—*शिवचरण चौहान* — 25
चिंतन — **संपूर्ण विकास के लिए जनसंख्या नियंत्रण जरूरी** —*संजय कुमार मिश्र* — 27
संस्कृति — **असम की सांस्कृतिक धरोहर—मोइदाम**—*डोली शाह* — 30
शब्द ज्ञान — **आओ, भारतीय भाषाएँ सीखें** — 32
राष्ट्र-चेतना — **सिंधी साहित्य में राष्ट्रीय चेतना**—*भगवान अटलानी* — 34
पर्यावरण-चिंतन — **वृक्ष ही बनाते हैं दक्ष**—*मुकेश पोपली* — 37
साहित्य — **भारतीय स्वतंत्रता संग्राम और प्रेमचंद की कहानियाँ**—*पल्लव* — 41
पुस्तक समीक्षा — 44
साहित्यिक गतिविधियाँ — 58
पुस्तकें मिलीं — 63

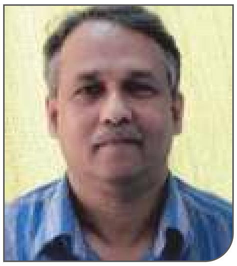

स्वाधीनता का 79वाँ वर्ष
नए स्वप्नों को साकार करने का अवसर

विश्व की सर्वाधिक प्राचीन संस्कृतियों में से एक, भारत की संस्कृति अपनी बहुरंगी विविधता और समृद्ध सांस्कृतिक-आध्यात्मिक विरासत में एकता को विविधता में प्रकट करती है। हिमालय इस राष्ट्र के सिर पर मुकुट की भाँति सुशोभित है तो हिंद महासागर इसके पाँव पखारता है। सिंधु सागर और बंगाल की खाड़ी इस राष्ट्ररूपी देह के दो विशाल जलीय बाहु की तरह दृष्टिगत होते हैं। ऐसा हमारा महान भारत देश इस वर्ष अपनी स्वाधीनता का 79वाँ वर्ष मना रहा है। निश्चय ही यह अवसर आम तौर पर सिंहावलोकन का होता है, जब हम स्वयं के अतीत के गौरव पर दृष्टिपात करते हैं और विचारते हैं कि आज हम कहाँ खड़े हैं।

मेरा मानना है कि हमें एक साथ विरासत और विकास, दोनों के साथ चलना चाहिए। जहाँ एक ओर, हमें अपनी समृद्ध विरासत पर गर्व करते हुए उस विरासत को संरक्षित और सुरक्षित रखते हुए नई पीढ़ी में विरासत के प्रति गौरव का बोध जगाना चाहिए, वहीं दूसरी ओर, राष्ट्र के विकास के प्रति सदैव सन्नद्ध और सचेतन रहते हुए प्रगति-पथ पर अग्रसर रहना चाहिए। जब एक राष्ट्र का विकास होता है तब सहज ही उस राष्ट्र का निवासी भी समृद्ध और सशक्त होता है। यह समय राष्ट्र के विकास की डोर को आकाशमार्गी बनाने का है। हमारे देश का वर्तमान नेतृत्व और वैज्ञानिक जब चंद्रयान से मंगलयान और अब गगनयान तक के सपने को साकार करने पर प्राणपण से जुटे हों तो लगता है कि हम कहीं-न-कहीं संसार के अन्य देशों के साथ विकासयान पर सवार हैं। विकास का सीधा अर्थ हर नागरिक के उन्नत जीवनशैली जीने के स्वप्न के पूर्ण होने से है। हम इसी दिशा में आगे बढ़ रहे हैं, यह गर्व की बात है।

यह अनायास नहीं था कि गत वर्ष 15 अगस्त की थीम 'विकसित भारत' थी। लक्ष्य यही है कि अपने राष्ट्र को सन् 2047 तक विकसित राष्ट्र की श्रेणी में ला खड़ा कर देना है। यह एक अग्रसोची विचार का ही परिणाम है कि हमने विकसित भारत का स्वप्न ही नहीं सँजोया है, बल्कि उसे साकार करने में भी बढ़-चढ़कर काम कर रहे हैं। सन् 47 से आज के भारत तक की यात्रा सतत विकास की ही यात्रा रही है, जब हम विश्व के बड़े-से-बड़े राष्ट्र के साथ सीधे-सीधे संवाद, सहयोग और सहभाग की स्थिति में स्वयं को पाते हैं। अभी-अभी बीते गणतंत्र दिवस, 26 जनवरी, 2025 को हमने यूँ ही 'स्वर्णिम भारत-विरासत और विकास' की थीम के साथ नहीं मनाया है। शिक्षा और साक्षरता के बिना विकास की बात करना बेमानी है। किंतु देश का नेतृत्व जब दृष्टिसंपन्न होता है तो राष्ट्र विकास की राह पर सहज ही चल पड़ता है। हम आज शिक्षा और साक्षरता, दोनों ही क्षेत्रों में अग्रिम पंक्ति के देशों के साथ-साथ चल रहे हैं। पुस्तक पठन, पुस्तक प्रकाशन और पुस्तक प्रोन्नयन के क्षेत्र में राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत के प्रयास और कार्य किसी परिचय का मोहताज नहीं है। न्यास का नाम इन क्षेत्रों के संदर्भ में लगभग पर्यायवाची ही बन चुका है।

अब थोड़ी चर्चा अपने राष्ट्र-ध्वज की भी कर लें। जैसा कि हम सब जानते हैं, 22 जुलाई, 1947 को हमारे देश की संविधान सभा ने, स्वाधीनता से मात्र कुछ समय पूर्व, हमारे वर्तमान स्वरूप के राष्ट्र-ध्वज को अंगीकार किया था। इसी कारण, इस दिवस को राष्ट्र-ध्वज अंगीकरण दिवस के रूप में मनाया जाता है। हमारे इस राष्ट्र-ध्वज के मध्य में जो 'चक्र' है उसकी 24 धुर्रियाँ देश की सतत उन्नति की प्रतीक हैं। यह जानना दिलचस्प होगा कि वर्ष 1906 में सिस्टर निवेदिता द्वारा निर्मित प्रथम राष्ट्र-ध्वज की रचना से लेकर राष्ट्र-ध्वज के वर्तमान स्वरूप में आने तक अनेक पड़ाव आए। स्वतंत्रता संग्राम के दौरान पहली बार 'तिरंगा' सन् 1906 में कोलकाता-ध्वज के रूप में सम्मिलित हुआ था।

हमारे लिए यह कितने गौरव की बात है कि हमारे तिरंगे ने अब तक कहाँ-कहाँ तक की यात्रा कर ली है! 29 मई, 1953 को हमारा तिरंगा एवरेस्ट की चोटी पर लहराया। 1974 में यह अपोलो-15 में बैठकर अंतरिक्ष की भी सैर कर आया। 1982 में तिरंगा दक्षिण गंगोत्री में फहराया गया। 1987 में यह दक्षिण ध्रुव तथा 1996 में उत्तरी ध्रुव पर भी फहराया जा चुका है। वर्ष 2008 में हमारे मानवरहित चंद्र अभियान के समय चाँद पर भी भारत का तिरंगा फहराया जा चुका है। 'हर घर तिरंगा' अभियान के इस चौथे वर्ष में, आइए, हम संकल्प करें कि भारतवर्ष का हर घर तिरंगे से रौशन हो जाए। आखिर, यह हमारे राष्ट्र-गौरव का सर्वाधिक मुखर प्रतीक जो है!

(प्रो. मिलिंद सुधाकर मराठे)
प्रधान संपादक, **पुस्तक संस्कृति**

जनजातीय समाज में शिक्षा

परिवर्तन एक सतत प्रक्रिया है। यह आशाओं, अपेक्षाओं और अभिलाषाओं से सतत प्रेरणा प्राप्त करती है। आज किसी भी समाज या राष्ट्र के संदर्भ में इसे वृद्धि, विकास और प्रगति के संदर्भ में आँका जाता है। भारत में विकास और प्रगति के किसी भी सकारात्मक आकलन में जनजातियों में हुए शैक्षिक, आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक परिवर्तन पर दृष्टिपात का अपना अलग ही महत्व होगा। वैसे, 20वीं सदी के सबसे महत्वपूर्ण परिवर्तनों में बहुधा विज्ञान, तकनीकी, उपनिवेशवाद के अंत से जुड़े परिवर्तनों की चर्चा होती है, लेकिन शिक्षा के

सार्वभौमिक अधिकार की वैश्विक स्वीकार्यता संभवतः इतिहास में मानवीय वैचारिकता द्वारा स्वीकृत सबसे अधिक महत्वपूर्ण परिवर्तनों में एक माना जाएगा। 1922 में महात्मा गांधी ने इसे भारतीयों, विशेषकर पिछड़े, प्रताड़ित तथा बहिष्कृत समाज के लिए विशेष रूप से 'आशा की ज्योति' कहा था। उनका आशय निश्चित रूप से समाज के उनलोगों की ओर था, जो सदियों से हाशिये पर धकेल दिये गए थे, संभ्रांत समाज से बहिष्कृत कर दिये गए थे, या जिनके जीवनयापन संबंधी कार्यों तक से स्व-घोषित उच्च समाज अपने को दूर कर चुका था। वनवासी समाज, जिसे आदिवासी समाज से भी संदर्भित किया जाता रहा है, संविधान में दर्शाया गया जनजाति समूह भी इस श्रेणी में आता है। यह वैज्ञानिक आधार पर गलत सिद्ध हो चुका है कि भारत के भी अनेक विशेष विचारधारा से जुड़े इतिहासकार भी यह 'सिद्ध' कर चुके थे–'सभ्य और सुसंस्कृत आर्य लोग तो भारत से बाहर से आए थे, और जो भारत के मूल निवासी थे, वे उनसे बहुत पिछड़े तथा विकास-प्रक्रिया से अपरिचित रहे लोग थे।' वैसे, आदिवासी भारत के मूल निवासी हैं, इसमें किसी को कोई संदेह नहीं होना चाहिए। भारत के संविधान में इनको जनजातीय 'ट्राइबल' की श्रेणी में रखा गया। ये जनजातियाँ सारे देश में फैली हैं। इस समय ये कुल जनसंख्या का लगभग 10.4 प्रतिशत हैं, 1951 में यह प्रतिशत 5.6 था। 2011 की जनगणना में, मिजोरम और लक्षद्वीप में जनजातीय आबादी का अनुपात सर्वाधिक, लगभग 95 प्रतिशत था। देश में ऐसे भी प्रांत हैं, जैसे हरियाणा और पंजाब, जहाँ जनजातियों का प्रतिशत नगण्य था।

जगमोहन सिंह राजपूत

पद्मश्री प्रो. जगमोहन सिंह राजपूत एक शिक्षाविद् और प्रतिष्ठित लेखक हैं। एनसीईआरटी के पूर्व निदेशक प्रो. राजपूत ने भौतिकी में शोधकर्ता के रूप में अपने करियर का शुभारंभ करके शिक्षा के क्षेत्र में पदार्पण किया। आपने एनसीईआरटी, एनसीटीई, बाल भवन सोसाइटी ऑफ इंडिया का नेतृत्व करते हुए शैक्षिक अनुसंधान और शैक्षिक प्रशासन में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। आप यूनेस्को के कार्यकारी बोर्ड में भारत के प्रतिनिधि रहे हैं।

सम्मान : पद्मश्री, यूनेस्को के जन अमोस मेडल से सम्मानित

प्रकाशन : 'एजुकेशन ऑफ मुस्लिम्स इन इंडिया' (2015), 'डायनेमिक्स ऑफ इंडियन एजुकेशन' (2019), 'गांधी को समझने का यही समय' (2020), 'भारतीय संस्कृति के आलोक में शिक्षा' (2022), 'भारतीय विरासत और वैश्विक समस्याएँ' (2024) शीर्षक कृतियाँ प्रकाशित हैं।

संपर्क : मोबाइल– 9810481415

मई 2025 में यह घोषणा सुनकर देश में सभी को प्रसन्नता हुई कि मिजोरम अब पूर्ण साक्षर राज्य बन गया है। इसके पीछे कारण कई हैं, लेकिन जनजातीय समाज की अनेक आवश्यकताएँ चिह्नित की गई हैं, उनमें उनके भविष्य को ध्यान में रखते हुए शिक्षा सबसे महत्वपूर्ण मानी जाएगी।

जनजातियों में स्वयं में ही अनेक भेद-विभेद हैं, और बोलियाँ तथा भाषाएँ अत्यंत प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हैं, और आत्मीयता से उपयोग में आती हैं। ऐसी भी अनेक भाषाएँ और बोलियाँ हैं, जिनकी कोई लिपि उपलब्ध नहीं थी। इस दिशा में बड़े सघन प्रयास किये गए और अनेक की लिपियाँ विकसित की गईं। वैसे, मूल निवासियों की उपस्थिति वैश्विक है, और यह भी सर्वविदित है कि यूरोप के 'सभ्य' समाज ने अमेरिका, ऑस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड में इनके साथ कैसा अमानवीय व्यवहार किया। 1965 में एनसीईआरटी बनने के बाद जनजातीय शिक्षा पर गहन कार्य आरंभ हुआ। देश में इस विषय पर पहला पीएच-डी करने वाले इस क्षेत्र के जाने-माने विद्वान प्रो. एन. के. अम्बष्ठ ने इस संबंध में पूर्वी-पश्चिमी सेंटर, हवाई में छठे दशक में वहाँ के एक आदिवासी का साक्षात्कार अपनी पुस्तक, 'जनजातीय शिक्षा' (पृष्ठ 45) पर बड़े ही मार्मिक ढंग से प्रस्तुत किया है। यह पूछे जाने पर कि 'आपकी दृष्टि में इस समय दी जा रही शिक्षा में क्या गलत है?' जो उत्तर मिला वह था, "मैं समझता हूँ कि आरोपित शिक्षा पूर्णतः गलत है। पढ़ना और लिखना ठीक है, परंतु विद्यालयों में दी जा रही शिक्षा हमारे बच्चों के अनुभवों से पूर्णतः भिन्न है। हम जो पुस्तकें अपने बच्चों को पढ़ाते हैं, यदि उनमें हमारी लोक कथाएँ हों, हमारा पर्यावरण हो, मछली पकड़ना और खेती करना जैसे हमारे व्यापार हों, प्रमुख तत्व के रूप में पड़ोस के प्रति भाईचारा और सामुदायिक जीवन हो, तो ऐसे तत्व हमारे समाज के लिए अधिक सार्थक और स्वीकार्य होंगे। इसी आधार पर एनसीईआरटी ने प्रो. एन. के. अम्बष्ठ के नेतृत्व में लगभग पाँच दशक तक कार्य किया, अभी भी हो रहा है। नई शिक्षा नीति में भी इस पर विशेष ध्यान दिया गया है।

भारत की जनजातियाँ कुछ राज्यों में बड़े पैमाने पर हुए समूल विनाश से तो बच गईं, लेकिन उनके साथ उचित और अपेक्षित व्यवहार अभी भी अपेक्षित स्तर तक प्रगति नहीं कर पाया है। इनकी वास्तविक स्थिति को देखते हुए भारत के स्वतंत्रता संग्राम में इनकी उपस्थिति और भागीदारी के महत्व को समझा गया था, और परिणामस्वरूप भारत के संविधान में जनजातियों के विकास, प्रगति और समानता तथा समकक्षता की ओर अग्रसर करने के लिए विशेष प्रावधान किये गए हैं। इस तथ्य को विश्लेषण करके समझा गया कि अनेक सदियों से विकास और प्रगति से जुड़े परिवर्तनों से अलग रहने के कारण और उनको समझ न पाने के कारण लगभग सभी जनजातियाँ अपने में सिमट गई थीं, आवश्यक और उपयोगी परिवर्तनों से भी अपरिचित रही हैं, या जान-बूझकर रखी गई हैं। यद्यपि, पहले से सकारात्मक ढंग से बहुत कुछ बदल गया है, फिर भी बहुत कुछ और भी करना होगा, क्योंकि इनका वर्तमान स्थिति में ही बने रहना किसी भी तरह स्वीकार्य भी नहीं है। अतः इनको इस परिवर्तनशील समय में सामूहिकता में जोड़ना होगा, और साथ-ही-साथ, इनकी सहस्त्राब्दियों से चली आ रही संस्कृति और इनकी प्रिय परंपराओं का संरक्षण भी करना होगा। रास्ता एक ही है, और जिसका कोई विकल्प नहीं है, इनको भी शिक्षा में लाना होगा, ऐसी शिक्षा, जो इनको अपनी लगे, अपनों से जोड़े रहे और इनके जीवन में ऐसे परिवर्तन लाए, जो इनको बाहर से थोपे हुए न लगें। एक उदाहरण लें—पढ़ाई किस भाषा में प्रारंभ हो? यह प्रश्न तो इनके संदर्भ में ही नहीं, पाँचवें-छठे दशक में हिंदीभाषी क्षेत्रों तक में बड़ी तेजी से उठाया गया था, जहाँ हिंदी की ही कई 'बोलियाँ' सैकड़ों वर्षों से बोली जाती रही थीं। लेकिन गाँव के बच्चे स्कूल में बोली गई 'शुद्ध' हिंदी को न तो समझ पाते थे, न ही उसको पढ़कर उन्हें कोई उपयोगी जानकारी मिलती थी। आदिवासी क्षेत्रों में तो शिक्षा का प्रारंभ अधिकांशतः उन अध्यापकों और प्रशासन के उन सरकारी अधिकारियों द्वारा प्रारंभ हुआ, जिनको न तो स्थानीय भाषा की जानकारी थी, न ही उस क्षेत्र की परिस्थितियों से कोई परिचय था। परिणाम की कल्पना आसानी से की जा सकती है। यही मुख्य कारण था, जिसके कारण आदिवासी समाज घोर आशंका में डूबा, शहरी लोगों से भयभीत हुआ, और स्पष्ट शब्दों में कहें, तो उनसे घृणा करने लगा! यहाँ स्वास्थ्य सेवाओं की भारी कमी है, निःशुल्क चिकित्सा केवल कागजों पर ही होती होगी, व्यावहारिकता में वह या तो ज्यादातर अनुपलब्ध है, या बिना दान-दक्षिणा के उपलब्ध नहीं है।

दैनंदिन जीवन में आदिवासी एक अन्य दुविधा से सदा ग्रस्त रहता है—उसे न जाने कब बाहरी लोग आकर विस्थापित कर दें! मैं स्वयं देश में अनेकानेक विस्थापनों से परिचित हूँ, लेकिन ऐसा कोई

"जहाँ हिंदी की ही कई 'बोलियाँ' सैकड़ों वर्षों से बोली जाती रही थी। लेकिन गाँव के बच्चे स्कूल में बोली गई 'शुद्ध' हिंदी को न समझ पाते थे, न ही उसको पढ़कर उन्हें कोई उपयोगी जानकारी मिलती थी। आदिवासी क्षेत्रों में तो शिक्षा का प्रारंभ अधिकांशतः उन अध्यापकों और प्रशासन के उन सरकारी अधिकारियों द्वारा प्रारंभ हुआ, जिनको न तो स्थानीय भाषा की जानकारी थी, न ही उस क्षेत्र की परिस्थितियों से कोई परिचय था। परिणाम की कल्पना आसानी से की जा सकती है। यही मुख्य कारण था, जिसके कारण आदिवासी समाज घोर आशंका में डूबा, शहरी लोगों से भयभीत हुआ, और स्पष्ट शब्दों में कहें, तो उनसे घृणा करने लगा!"

उदाहरण मुझे नहीं मिला, जिसमें सरकार या उद्योग पहले बसावट की व्यवस्था कर देते, उसके बाद विस्थापन करते! उत्तर प्रदेश के तब के मिर्जापुर जिले में आदिवासियों को विस्थापित कर एल्युमिनियम का कारखाना लगा था। बहुत वर्षों बाद वहाँ जाने पर मुझे बताया गया कि अनेक बसाहटों को तो तीन बार विस्थापित किया गया।

1989 के जनजातीय और अनुसूचित जातीय अधिनियम और शिक्षित युवाओं की बढ़ती संख्या ने आदिवासी समुदाय को सारे देश में उन अत्याचारों के विरुद्ध आवाज उठाने का साहस दिया, जिसमें उनकी बढ़ती हुई अस्मिता की पहचान का भी बड़ा योगदान था। अब उनके पास सदियों से हो रहे विभिन्न प्रकार के अत्याचारों से निबटने का कम-से-कम कानून तो था! यद्यपि, उनकी सामर्थ्य अभी भी उस स्तर तक नहीं पहुँची है कि वे न्यायालय तक पहुँच सकें, और न्याय पा सकें। सदियों से उनके साथ हो रहे शाब्दिक, भौतिक, शारीरिक/यौनिक, सामाजिक, सांस्कृतिक अत्याचार अब कानूनन अपराध थे, और यह बात आदिवासी जान गए हैं, समझ भी गए हैं, लेकिन कमी केवल यह बनी रही है कि प्रशासनिक तंत्र और उससे जुड़े अधिकारी उनका विश्वास अर्जित नहीं कर सके। इसी कारण सकारात्मक परिवर्तन की गति शिथिल पड़ गई, और आज भी है। इस स्थिति का फायदा भ्रष्ट अधिकारियों, स्वार्थी व्यापारी और राजनैतिक विचारधारा के प्रचार-प्रसार में लगे लोगों और वर्गों ने उठाया। वहाँ के लोगों की नादानी का फायदा उठाकर उनको अनेक प्रकार के आंदोलनों में डाल दिया, जो तेजी से हिंसक हो गए। यह भी कहा जाता है कि सरकारें उनको सही ढंग से संधान और पारस्परिक समझ के रास्ते पर नहीं ला पाईं। परिणामस्वरूप, प्रगति की योजनाएँ गति नहीं पकड़ सकीं, और हिंसा के बढ़ने के लिए ऊर्वर जमीन तैयार हो गई।

जनजातियाँ पहले से ही अपने सीमित, या कहें कि संकुचित, दायरे में रहती थीं। निर्णय लेने वाले शहरी समाज ने बहुत देर में अपनी जिम्मेवारी को समझा। वैसे, सामान्य विश्वास तो यही है कि विदेशों से आए ईसाई धर्म-प्रचारकों ने स्थिति को अपने अत्यंत अनुकूल पाया। उन्होंने अपनी पैठ सौजन्यता, अनुदान, दवाई जैसी सामान्य आवश्यकताओं की पूर्ति में भाग लेकर बनाई। प्रारंभ से ही इस प्रकार उनका विश्वास जीता और अपने उद्देश्य में सफल रहे। ब्रिटिश सरकार की उपस्थिति इसमें अत्यंत सहायक थी। स्वतंत्रता के बाद जब सरकारी तंत्र इस समाज के पास पहुँचा, तो उसे वहाँ व्यक्तिगत स्तर पर भ्रष्ट आचरण और बड़े स्तर पर प्राकृतिक संसाधनों के शोषण की अत्यंत खुली तथा आसानी से उपलब्ध संभावनाएँ दिखीं। ईसाई धर्म-प्रचारकों को ब्रिटिश सरकार के चले जाने से जो चिंता हो रही थी, वह भ्रष्ट सरकारी अधिकारियों की उपस्थिति से स्वतः ही दूर हो गई। ईसाई धर्म-प्रचारकों को यह श्रेय सभी देते हैं कि उन्होंने शिक्षा को बढ़ावा दिया, स्वास्थ्य की सुविधाएँ निर्मित कीं। संविधान में सभी को अपने धर्म यानी पंथ या मजहब का प्रचार और प्रसार करने का अधिकार दिया गया है। पंथनिरपेक्ष देश में लोग तो उसी की ओर आकर्षित होंगे, जो उनको सम्मान देगा, शिक्षा के अवसर प्रदान करेगा और जीवन के ऐसे कौशल सिखाएगा, जो एक अच्छे भविष्य की संकल्पना को साकार कर सकें। लगभग सभी जनजातीय समूहों में यह धारणा बलवती रही है कि उन्हें बहिष्कृत इसलिए माना जाता है कि वे किसी बड़े या संगठित धर्म के भाग नहीं हैं, और जो पूजा-अर्चना पद्धति वे अपनाते हैं उसे सही या सम्मानपूर्ण निगाह से नहीं देखा जाता है। उनकी परंपराओं और संस्कृति को भी बहुत ही हल्के ढंग से लिया जाता है। ये अवधारणाएँ अपनी जगह सही थीं। आजादी के पहले दो दशकों में बनी फिल्मों का यदि विश्लेषण किया जाए तो उनमें से अधिकांश में एक आदिवासी नृत्य तो होगा ही, जो निहायत भोंडेपन से संकल्पित और चित्रांकित किया गया होगा। आदिवासी पात्र केवल हास्य- मनोरंजन के लिए ही उपयुक्त माने जाते थे। यह सही था कि कई 'जनजातियाँ या आदिवासी समुदाय' स्थिर मानसिकता, भौगोलिक अलगाव, धर्म और सामाजिक, शैक्षिक और आर्थिक पिछड़ेपन से पीड़ित रहे थे, और ऐसा सर्वेक्षण के द्वारा भी स्थापित हुआ था, लेकिन इस स्थिति के कारणों का अध्ययन उस गहराई से आजादी के बाद तो उपलब्ध ही नहीं था। अतः जो योजनाएँ बनायी गईं, उनमें अपेक्षित स्तर की समझ की कमी स्वाभाविक ही थी।

जब विकास की प्रक्रिया संविधान के निर्देशों और प्रावधानों के आधार पर प्रारंभ हुई, तब स्थिति की समझ धीरे-धीरे बढ़ी, और सुधार होते गए। सरकारी दस्तावेजों में इस संबंध में बहुत ऐसी जानकारी मिल सकेगी, लेकिन उसके आदिवासियों के जीवन पर पड़े प्रभाव को देखने तो उनकी बस्तियों तथा गाँवों में ही जाना होगा! इस प्रकार के सुझाव से सरकारी तंत्र सहज नहीं हो पाता है। करीब दस वर्ष पहले हमने जमशेदपुर से 100-150 किलोमीटर में बसे कुछ आदिवासी गाँवों में बिना किसी सूचना के जाकर समय बिताया, लंबी चर्चाएँ कीं, बातचीत की, उनके साथ खाना खाया। घरों की सफाई तथा घर-बाहर को स्वच्छ और सुसज्जित रखने की उनकी रुचि और उसमें नवाचार में सभी की एक जैसी रुचि देखकर मन को अत्यंत अच्छा लगा। वहाँ एक एकल विद्यालय में गया। विद्यालय बड़े सुचारु रूप से चलता था, लोग सभी आवश्यक सहायता करने को सदा तैयार रहते थे। अब शिक्षा में उन सबकी लड़के और लड़कियों के लिए समान रूप से गहरी रुचि जाग गई थी। ऐसे सकारात्मक परिवर्तन देखकर सभी को अच्छा लगेगा।

भारतीय समाज में जातिगत संदर्भ में 'उच्च' और 'निम्न' शब्दों का प्रयोग वर्तमान समय में काफी कम हो गया है। सामान्य व्यवहार में अब यह अस्वीकार्य माना जाता है, मगर समाप्त नहीं हुआ है। समाज ने अनुसूचित जातियों और जनजातियों के प्रति जो परंपरागत दुर्भावनाएँ बना रखी थीं, उनकी प्रकृति में अंतर था, लेकिन कटुता और बहिष्करण को नियम बनाकर रखने वालों में उसे तेजी से समाप्त कर पाना संभव नहीं हो रहा था। अतः भारत सरकार को इस स्थिति से निबटने के लिए जनजाति और अनुसूचित जाति विधेयक (1989) लाना पड़ा। इस विधेयक के आने के बाद बड़ी अपेक्षाएँ थीं कि

जनजाति के लोगों को उनके वे सब मानवाधिकार प्राप्त हो जाएँगे, जो संविधान उनको सामान्य और विशेष रूप से प्रदान करता है। लेकिन अनेक सुधार के बाद भी अपेक्षित परिवर्तन नहीं हो सका। नक्सलवाद जैसे आंदोलनों ने इस प्रक्रिया में अनेक बाधाएँ पहुँचाईं। दूसरी तरफ, अफसर और 'सभ्य' समाज भी अपने पदों का दुरुपयोग बंद करना सीख नहीं पाया था/है। आज भी जब नक्सलियों के पुलिस मुठभेड़ में मारे जाने की खबरें आती हैं, तो वे निश्चित ही अत्यंत कष्टकर होती हैं। इनको समझना और उनकी मनःस्थिति का अध्ययन करना तो हमारा काम था, जो इनसे इन्हीं की भाषा में संवाद से संभव होना चाहिए। ये अपने ही अत्यंत निश्छल, मगर बरगलाए लोग अपनों द्वारा सँवारे जाने के स्थान पर मारे जा रहे हैं। इन्हीं के समाज के लोगों के बीच बैठकर समझना इनका कार्य तो नहीं था। ऐसे लोग चाहिए थे, जो गांधी की आत्मा से प्रेरित होते, इनको जानते, समझते! ऐसा हुआ नहीं। अधिकारियों ने जो किया, केवल अधिकारी के रूप में ही किया, जिससे अपनत्व नहीं पनप सका। अपवाद भी अनेक रहे होंगे।

जनजातियों के साथ अनेक प्रकार के अत्याचार और अनाचार देश के सामने लाने में बस्तर के तत्कालीन कलेक्टर डॉ. बी.डी. शर्मा का नाम आज भी बड़े सम्मान के साथ लिया जाता है, क्योंकि उन्होंने वे सब भ्रष्ट आचरण, जो अधिकारी वहाँ जाने पर करते थे, देश के सामने उजागर किए। वहाँ पाईन के पेड़ों को लगाने का बड़ा प्रोजेक्ट सरकार ने उद्योगपतियों को स्वीकृत कर दिया था, जिसका सीधा मतलब था वहाँ के मूल निवासियों का विस्थापन और शोषण ही नहीं, वहाँ की प्राकृतिक तथा आदिवासियों के जीवन-स्रोत, जंगलों की जमीनों को बाहरी लोगों, उद्योगपतियों द्वारा शोषण। पहली बार देश में एक सरकारी अधिकारी (कलेक्टर) ने सरकारी योजना का खुलकर विरोध किया; 'उसके विरुद्ध संघर्ष किया' कहना अधिक उचित होगा, क्योंकि डॉ. शर्मा ने अपना बाद का सारा जीवन जनजातियों के कल्याण के लिए कार्य करने में लगा दिया, और उनमें एक नई क्रांतिकारी जागृति उत्पन्न कर दी।

लेकिन यह भी सही है कि उद्योगपतियों को जमीन चाहिए, उनको वहाँ के उपलब्ध खनिज का दोहन करना है, फिर और उद्योग लगाने हैं, बदले में मिलती है विस्थापन, मजदूरी, शोषण, गरीबी की अटूट परंपरा। यह तो वैश्वीकरण का युग है, वैश्विक कंपनियाँ उद्योग नहीं लगाएँगी तो उत्पादन कैसे बढ़ेगा? रोजगार नहीं बढ़ेगा, व्यापार नहीं बढ़ेगा। छतीसगढ़, झारखंड, उड़ीसा जैसे प्रांत अपने प्रचुर मात्रा में उपलब्ध खनिज पदार्थों के लिए जाने जाते हैं। वे देश में इनके उत्पादन में, उत्खनन में उद्योग लगाने में अग्रणी हैं। आठ दशकों के पश्चात इन प्रांतों में तो गरीबी, अशिक्षा, निराशा, बीमारी, भुखमरी का समूल नाश हो जाना चाहिए था! आखिर, यहाँ के संसाधनों का अधिकृत, और उससे ज्यादा अनधिकृत, उपयोग करने में कभी कोई कोताही नहीं बरती गई। इन प्रांतों के आदिवासियों के जीवन-स्तर में कागजों पर सुधार कितना हुआ है यह सभी जानते हैं। दस्तावेज उपलब्ध हैं। लेकिन इनका जीवन अपेक्षित स्तर तक क्यों नहीं सुधरा, यह जानने और समझने के लिए तो स्वयं ही प्रयास करना अधिक उपयुक्त हो सकता है। प्रश्न यह है कि हर प्रकार के सार्वभौमिक भाईचारे का उपदेश देने वाले देश में वहाँ की ही 10% से अधिक जनसंख्या का शोषण अभी भी क्यों समाप्त नहीं हुआ है? क्या केवल इसलिए कि इस समाज के पास सबसे बड़ी कमी शिक्षा और कौशलों में आए नयेपन की थी? मेरे विचार से शायद इतना, या इससे बड़ा कारण यह था कि वे पढ़े-लिखे सरकारी अधिकारियों की चारित्रिक कमियों से परिचित ही नहीं थे। चोरी-चकारी, धोखा देना, किसी की संपत्ति हड़प लेना वे जानते ही नहीं थे। जमीन की रजिस्ट्री जैसी किसी प्रक्रिया से वे परिचित ही नहीं थे। जिसने जहाँ चाहा, अँगूठा लगवाकर जमीन हड़प ली। सरकारी बाबुओं ने इसका भरपूर लाभ उठाया। डॉ. शर्मा ने सरकारी अधिकारियों के घरों में गृह-सेविका का कार्य करने वाली जनजातीय लड़कियों की शादी उनसे ही करवाई। इससे अधिक कुछ कहने की आवश्यकता ही नहीं है। बस्तर, जो उस समय क्षेत्रफल की दृष्टि से भारत का सबसे बड़ा जिला था, और जिन परस्थितियों से वहाँ के मूल निवासी जीवन की समस्याओं से जूझ रहे थे, उसकी ओर डॉ. बी.डी. शर्मा की पहल और लगन तथा कर्मठता ने सारे देश का ध्यान इस ओर खींचा था। यह उस पहल का ही मुख्य परिणाम है कि बाद में अनेक प्रकार की सरकारी योजनाएँ और कार्यक्रम बने, शिक्षा के प्रसार और प्रचार पर विशेष ध्यान दिया जाने लगा।

पिछले दस-ग्यारह वर्षों में जनजातीय क्षेत्रों तथा लोगों के लिए बहुत कुछ किया गया है। स्कूलों की संख्या बढ़ी है, आवासीय स्कूल वरदान साबित हुए हैं। आने-जाने के लिए सुगम मार्गों की व्यवस्था की गई है, और त्वरित गति से की गई है। नई शिक्षा नीति-2020 में भी भाषा आवश्यकता और बहुलता का विशेष ध्यान रखने पर जोर दिया गया है। बच्चे को स्कूल आने पर ऐसा न लगे कि वह किसी अनजान जगह तथा अनजान लोगों के बीच आ गया है, जो न जाने कौन-सी भाषा में बात कर रहे हैं, और सारा वातावरण उसके लिए लगभग भयावह है!

देश उस दिन की प्रतीक्षा में है, जब देश का हर आदिवासी न केवल शिक्षित होगा, वह अपनी मातृभाषा में प्रवीणता के साथ-साथ देश और क्षेत्र की अन्य भाषाओं में भी पारंगत बनने के महत्व से परिचित होगा। उनके परंपरागत कौशलों को तथा वहीं उपलब्ध संसाधनों को आधुनिक स्वरूप देते हुए संबंधित नवाचारों का विकास करना प्राथमिकता होनी चाहिए। इसमें जानकार, विशेषकर आधुनिक परिवर्तनों के जानकार, जिनको आदिवासियों की कुशलता और बौद्धिकता पर पूर्ण विश्वास हो, बड़ी मदद कर सकते हैं। ऐसे लोगों को ही स्वेच्छा से आदिवासी क्षेत्रों में जाना चाहिए, छोटे उद्योग लगाकर/लगवाकर उदाहरण प्रस्तुत करना चाहिए। इसके साथ-साथ, शिक्षा को बहुआयामी बनाकर लोगों को उसकी उपयोगिता में विश्वास बढ़ाना होगा। विस्थापन की नीति तथा उसका अनुपालन पूर्णरूपेण मानवीय पक्ष को प्राथमिकता देते हुए संबंधित व्यक्तियों के साथ संवाद के बिना किसी हाल में नहीं किया जाना चाहिए। जनजातियों को मानवीय गरिमा का नैसर्गिक अधिकार पूरी तरह मिलने में कोई देरी नहीं होनी चाहिए।

ध्वज के महत्व का प्रतिपादन राष्ट्रीय ध्वज का अंगीकरण

हम भारत के लोग, 15 अगस्त, 1947 के दिन खंडित स्वाधीनता प्राप्त कर चुके थे, परंतु लोकतांत्रिक स्वतंत्रता हमने 26 जनवरी, 1950 से क्रियान्वित की। इस 2 वर्ष 5 महीने 11 दिन के कालखंड में घटनाओं एवं दुर्घटनाओं का ताँता लगा हुआ था। "मेरे जीते जी देश का विभाजन नहीं होने दूँगा," ऐसी घोषणा करने वाले महात्मा गांधी नेहरू के सामने असहाय थे। मोहम्मद अली जिन्ना द्वारा घोषित प्रतिशोधात्मक 'सीधी कार्रवाई', विभाजन की त्रासदी से निर्मित हिंसा, विस्थापितों के पुनर्वास की अनिश्चितता, महात्मा गांधी की हत्या, उसकी प्रतिक्रिया में हुई हिंसा, विस्थापितों की सेवा में लगे हुए संगठन पर प्रतिबंध, प्रतिबंधित संगठन राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के संविधान को स्वीकार करते हुए उसे निर्दोष घोषित करना आदि कारणों से दिसंबर 1946 से प्रारंभ की गई संविधान-निर्माण की प्रक्रिया बाधित हो रही थी। निर्धारित भूखंड अपने अधीन होने के बाद निर्धारित तंत्र के सहारे अपने देश के प्रशासनिक सूत्रों को हस्तगत करने के बीच का यह कालखंड, भारत के इतिहास का सर्वाधिक उथल-पुथल का कालखंड था।

लक्ष्मीनारायण भाला 'लक्खी दा'

जन्म : 21 जनवरी, 1945; चिखली, महाराष्ट्र

शिक्षा : नागपुर विश्वविद्यालय से वाणिज्य में स्नातक तथा हिंदी से विशारद की उपाधि प्राप्त

लेखन : संस्कृत, हिंदी, अंग्रेजी, असमिया, मराठी, नेपाली आदि को जानने वाले बहुभाषाविद्; तीन काव्य-संग्रहों समेत 15 कृतियाँ प्रकाशित। इसके साथ ही समकालीन समय, समाज और सरोकार से जुड़े लेख विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में निरंतर प्रकाशित

संप्रति : वर्ष 2018 से हिंदू आध्यात्मिक सेवा प्रतिष्ठान का दायित्व सँभालने के साथ-साथ, अंतरराष्ट्रीय न्यूज संस्थान के निदेशक

संपर्क : मोबाइल– 9818400713

लगभग 299 से 379 के बीच घटती-बढ़ती सदस्यों की संख्या वाली संविधान सभा 6 दिसंबर, 1946 को गठित होने के बाद 24 जनवरी, 1950 को विसर्जित हुई थी। कुल तीन वर्ष एक महीना 18 दिन के कार्यकाल में संविधान के विभिन्न आयामों को लेकर कुल 22 उप समितियाँ गठित की गई थीं। दीर्घकालीन काम के लिए गठित नौ प्रमुख समितियाँ तथा अल्पकालीन काम के लिए 13 लघु समितियाँ इस दौरान कार्यरत थीं। संविधान सभा के अध्यक्ष, डॉ. राजेंद्र प्रसाद चार उप समितियों के भी अध्यक्ष थे, वे थीं—प्रक्रिया समिति, सुकाणु समिति, अर्थ विनियोग तथा कर्मचारी नियोग समिति और राष्ट्रीय ध्वज निर्धारण तदर्थ-समिति। इस तदर्थ-समिति के अन्य चार सदस्य थे—कन्हैयालाल मुंशी, अल्लादी कृष्ण स्वामी अय्यर, एन. माधवराव तथा बी. एल. मित्तर। इस समिति को भारत का राष्ट्रीय ध्वज कैसा होगा इस विषय में अंतिम निर्णय लेकर उसे संविधान सभा में पारित करवाना था। स्वाधीनता आंदोलन में जबसे झंडे का उपयोग किया गया था, तबसे वह किस-किस रूप में था, इस विषय का पूरा इतिहास खँगालने के बाद इस उप समिति ने भारत के संविधान सभा के चौथे अर्थात 14 से 31 जुलाई, 1947 के चर्चा सत्र में अंतिम निर्णय के रूप में अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत किया। सन् 1906 के अगस्त माह से प्रारंभ

की गई ध्वज निर्माण की प्रक्रिया से लेकर ध्वज के निर्धारित स्वरूप के अंगीकरण की तारीख 22 जुलाई, 1947 तक की राष्ट्रीय ध्वज की वह ऐतिहासिक यात्रा बहुत ही रोमांचक है।

रॉबर्ट क्लाइव के नेतृत्व में 1757 के पलासी-युद्ध में नवाब सिराजुदौल्ला को पराजित करने के कारण मुगलों के अत्याचारों से पीड़ित बंगाल तथा पूर्वोत्तर क्षेत्र की जनता हर्ष मना रही थी। रॉबर्ट क्लाइव ने इस अनुकूलता का लाभ उठाते हुए ईस्ट इंडिया कंपनी के

1857 के संग्राम का बहादुरशाह जफर का ध्वज

नाम जमीन खरीदकर कोलकाता में राजधानी स्थापित करने तथा धीरे-धीरे अंग्रेजों के राज्य का विस्तार करने की योजना बनाई। सन् 1772 में राजधानी स्थापित कर इंग्लैंड से 1773 में भारत पर राज करने की नियमावली मँगवायी गई। सन् 1773 के बाद 1781, 1784, 1786 आदि अधिनियम और 1793, 1813, 1833, 1853 आदि राजपत्र इंग्लैंड से भेजे गए थे और उनके प्रतिनिधि उसी के सहारे यहाँ राज करते थे। भारतीय जनता में 'फूट डालो और राज करो' अंग्रेजों की यह नीति भारत विरोधी षड्यंत्र का हिस्सा है यह बात धीरे-धीरे उजागर होने लगी। जनता और सेना में भी असंतोष फैलने लगा। एक ओर, 'यूनियन जैक' की छत्रछाया में उसकी रक्षा के लिए अंग्रेजों की सेना में भारतीय जनता शामिल हो रही थी तो दूसरी ओर, अंग्रेजी शासन का विरोध करने वालों को संगठित करने वाले जननेता स्वाधीनता आंदोलन को आगे बढ़ा रहे थे। सन् 1857 का विद्रोह उसी का एक परिणाम था। भारतीय जनता में प्रकट हो रहे इस असंतोष का मुकाबला करने के लिए और भी कठोर कानून बनाए जाने लगे। परिणामतः, अंग्रेज सरकार 1858, 1861, 1876, 1892 अधिनियम भारत पर थोपती रही। दोबारा विद्रोह की स्थिति आने न पाए ऐसा विचार करते हुए एक अंग्रेज अफसर एच.ओ. ह्यूम तथा तत्कालीन स्वाधीनता संग्रामी दादाभाई नौरोजी आदि के प्रयास से संघर्ष के स्थान पर संवाद का मार्ग खोजने के लिए सन् 1885 में कांग्रेस की स्थापना की गई। समाज में अपना वर्चस्व बनाए रखने के लिए सरकार के द्वारा अंग्रेजी राज स्थापित होने के प्रतीक के रूप में इंग्लैंड का झंडा 'यूनियन जैक' स्थान-स्थान पर फहराया जाने लगा।

ध्वज के महत्व की अनुभूति

नागपुर में सीताबर्डी किले पर फहराते हुए 'यूनियन जैक' को देखकर एक देशप्रेमी बालक केशव हेडगेवार अपने मित्रों को लेकर उस किले के प्रवेश-द्वार पर पहुँचा और द्वारपाल से अंग्रेजों के 'यूनियन जैक' के स्थान पर अपना भगवा झंडा फहराने की अनुमति माँगी। वहाँ से खदेड़े जाने के बाद सुरंग खोदकर किले के अंदर तक पहुँचकर 'हम झंडा बदलेंगे' यह अभियान उन बालकों ने शुरू किया। कुछ ही दिनों में इसकी जानकारी उनके शिक्षक को मिली, तो उन्होंने उन बालकों को समझाया कि केवल एक स्थान का झंडा बदलने से कुछ नहीं होगा, देशभर की जनता को इसके लिए जागरूक करना होगा। वह काम करो। इस घटना की जानकारी नागपुर के प्रबुद्ध जनों में पहुँची और चर्चा का विषय बनी। इसी बीच, अधिनियम 1892 के सहारे बंगाल की जनता में भेद-निर्माण करने की रणनीति के तहत अंग्रेज सरकार ने सन् 1905 में बंगाल के विभाजन का कानून पारित किया। बंगाल की जनता इसके विरोध में मुखर हुई। कविगुरु रवींद्रनाथ ठाकुर भी आंदोलन में शामिल हुए। लाल-बाल-पाल के नेतृत्व में पूरा देश आंदोलन करने लगा। 'यूनियन जैक' के विकल्प के तौर पर अपना कोई झंडा अपनाया जाए, यह विचार उभरा और भारत का पहला राष्ट्रीय ध्वज 7 अगस्त, 1906 को कोलकाता के पारसी बागान स्क्वेयर अर्थात ग्रीन पार्क में फहराया गया। आंदोलन में और

सिस्टर निवेदिता का ध्वज 1905

अधिक तीव्रता आई। इस आंदोलन को शांत करने के लिए भारतीय परिषद अधिनियम 1909 इंग्लैंड से भेजा गया। इसमें भारतीय जनता को शासन में प्रतिनिधित्व दिया जाएगा, इस प्रकार का प्रलोभन दिया गया था। अंग्रेजों की यह चालाकी काम नहीं आई और आंदोलन अधिक उग्र हुआ। देश की पहचान में ध्वज के महत्व को रेखांकित करने वाले केशव हेडगेवार 1910 में वैद्यकीय पढ़ाई करने के लिए नागपुर से कोलकाता आ चुके थे और आते ही आंदोलन में सहभागी भी हो गए थे। आंदोलन की उग्रता को देखते हुए 1911 में सरकार को यह कानून वापस लेना पड़ा। बंगाल का विभाजन टल गया।

ध्वज के महत्व को समझते हुए स्वाधीनता आंदोलन में जिस ध्वज का प्रथम प्रयोग किया गया था वह ध्वज लाल, पीले एवं हरे रंग की समान आकार की तीन पट्टियों से बनाया गया था। ऊपरी पट्टी का रंग हरा, बीच में पीला और नीचे वाली पट्टी का रंग लाल था। हरे रंग में आठ अधखिले कमल, पीले रंग में देवनागरी लिपि में लिखा हुआ 'वंदेमातरम्' और लाल रंग की पट्टी में एक-तिहाई चाँद और पूरा सूरज अंकित किया गया था। एक वर्ष बाद, सन् 1907 में, उसी

कोलकाता ध्वज

1906

3:2 के आकार वाले कपड़े पर ऊपरी पट्टी केसरिया रंग की कर दी गई, जिसमें आठ तारे अंकित किये गए, बीच वाली पट्टी पहले जैसी ही रखी गई और तीसरी, नीचे वाली पट्टी हरे रंग की कर दी गई, जिसमें चमकता हुआ सूरज तथा एक-तिहाई चाँद अंकित किये गए। मैडम भीकाजी कामा के नेतृत्व में यह ध्वज जर्मनी में फहराया गया। विदेशी भूमि पर फहराया जाने वाला यह भारत का पहला राष्ट्रीय ध्वज था। लगभग 10 वर्ष बाद, सन् 1917 में लोकमान्य तिलक तथा डॉ. एनी बेसेंट ने नया ध्वज बनवाया। ध्वज का आकार वही था, परंतु पाँच लाल और चार हरी पट्टियाँ एक के बाद एक आँकी गई। ऊपरी बाएँ कोने में छोटा 'यूनियन जैक', ऊपरी दाहिने कोने में चाँद और तारा तथा बाकी हिस्से में सप्तर्षि तारों के समान सात तारे अंकित किये गए। होमरूल आंदोलन के दौरान, इस ध्वज का भरपूर उपयोग किया गया। केवल चार वर्ष बाद ही, सन् 1921 में एक नया झंडा प्रस्तुत किया गया। इस झंडे में तीन रंगों की तीन पट्टियों का क्रम ऊपर से नीचे की ओर क्रमशः सफेद, हरा एवं लाल रखते हुए तीनों रंगों पर छाने वाला काले रंग का बड़े आकार का चरखा अंकित किया गया था। इसे आंध्र प्रदेश कलाकार पिंगली वेंकैया द्वारा बनाया गया था। राष्ट्रीय ध्वज की बार-बार परिवर्तित हो रही बनावट या रूपरेखा को अंतिम रूप दिया जाए, यह सोचकर सन् 1929 में कांग्रेस की कार्यसमिति ने एक ध्वज समिति गठित की। पट्टाभि सीतारमय्या के संयोजकत्व में जवाहरलाल नेहरू, सरदार पटेल, मौलाना अबुल कलाम आजाद, मास्टर तारा सिंह, काका कालेलकर और डॉक्टर हार्डीकर इस समिति के सदस्य थे। समाज के प्रमुख लोगों से विचार-विमर्श कर इस समिति ने अपना सर्वसम्मत प्रतिवेदन प्रस्तुत किया। भारत जैसे प्राचीन देश का ध्वज भारत की विशिष्ट, कलात्मक तथा सर्वसमावेशी पहचान के अनुकूल हो यह देखा जाना चाहिए, ऐसा विचार बना। भगवा, केसरिया अथवा बसंती रंग भारत की प्रकृति एवं संस्कृति को प्रतिबिंबित करता है। अपना ध्वज रंगबिरंगा न करते हुए उपरोक्त तीन में किसी एक रंग का हो, यही उस समिति का सर्वसम्मत मत था। गांधी जी ने इस पर विचार करते हुए यह मत प्रस्तुत किया कि भगवे रंग का महत्व बनाए रखने के लिए इस तिरंगे में भगवे रंग को ऊपरी स्थान दिया जाए तथा पिंगली वेंकैया द्वारा तैयार किया गया ध्वज स्वीकार कर लिया जाए। उद्यम एवं समृद्धि के प्रतीक के रूप में सफेद पट्टी पर चरखा अंकित कर दिया गया। कांग्रेस कमेटी ने सन् 1931 की 26 मार्च से 31 मार्च तक कराची में हुई कार्यकारिणी की बैठक में इसे स्वीकृत कर लिया। स्वतंत्रता संग्राम का एक सर्वमान्य मंच होने के कारण कांग्रेस द्वारा स्वीकृत मत ही राष्ट्रीय मत माना जाता था। राष्ट्रीय झंडे के बारे में भी यही बात थी।

सन् 1921 से 1931 के इन 10-11 वर्षों के कालखंड में झंडे से जुड़ी हुई कुछ प्रमुख घटनाओं पर विचार करें तो ध्यान में आता है कि अंग्रेजों ने अपनी राजधानी कोलकाता से हटाकर दिल्ली स्थानांतरित कर ली थी। दिल्ली के लाल किले पर 'यूनियन जैक' फहराने लगा था। बचपन में 'यूनियन जैक' के स्थान पर भारत का झंडा फहराने के

होमरूल लीग का ध्वज

1917

लिए कुछ बच्चों को जुटाने वाला केशव हेडगेवार डॉक्टर बनकर कोलकाता से नागपुर आ चुका था। सन् 1925 में डॉ. हेडगेवार ने राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की स्थापना करते हुए झंडा समिति के सुझाव के अनुरूप भगवा ध्वज को राष्ट्रीय सम्मान देने की दिशा में कदम बढ़ाते हुए उसे गुरु के स्थान पर प्रतिष्ठित कर दिया। संघ देशसेवा में जुट गया। राजनैतिक पृष्ठभूमि की कांग्रेस और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि का राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ, इन दोनों संगठनों में तालमेल बना रहे इसका ध्यान डॉ. हेडगेवार रखते थे। उन्होंने तिरंगा ध्वज हाथ में लेकर देश की स्वतंत्रता के लिए जंगल सत्याग्रह करना और भगवा ध्वज की छत्रछाया में देश की सेवा करने वालों की संगठित शक्ति

खड़ी करना, इस प्रकार के दोहरे दायित्व की सामाजिक परंपरा को अपनाया और आगे बढ़ाया।

राष्ट्रीय ध्वज की इस रोमांचक यात्रा के इन पड़ावों में सर्वाधिक उथल-पुथल का पड़ाव द्वितीय विश्व युद्ध के छह वर्ष के कालखंड का था। सन् 1939 की 01 सितंबर से प्रारंभ हुए युद्ध की समाप्ति 02 सितंबर, 1945 के दिन हुई थी। 'यूनियन जैक' की गरिमा के लिए लड़ने वाली इंग्लैंड की सेना में लगभग 24,000 भारतीय सैनिक थे, जिनमें सैकड़ों शहीद हो गए थे। इसी कालखंड में, तिरंगा झंडे की छत्रछाया में सन् 1942 का 'अंग्रेजो भारत छोड़ो आंदोलन', नेताजी सुभाष चंद्र बोस के नेतृत्व में आजाद हिंद फौज के द्वारा भारत की अंग्रेजी सत्ता पर आक्रमण, इंग्लैंड से प्रेषित 20 जून, 1948 को भारत की सत्ता का हस्तांतरण कर भारतीय नेताओं को सौंप देने का आदेश, माउंटबेटन के हस्तक्षेप के कारण इस आदेश को निरस्त कर दस मास पूर्व ही, 15 अगस्त, 1947 को हिंदुस्तान का विभाजन करते हुए सत्ता के हस्तांतरण का नया आदेश तथा हिंसा के वातावरण में स्वाधीनता प्राप्ति का हर्ष प्रकट करने की विसंगति युक्त त्रासदी घटित हुई। ऐसी असामान्य स्थिति में देश भटक रहा था। ऐसी स्थिति में यह जरूरी था कि 15 अगस्त, 1947 से पहले देश का झंडा निश्चित कर लिया जाए। यही कारण था कि झंडा समिति ने अपना प्रतिवेदन 14 जुलाई से 31 जुलाई तक होने वाले संविधान सभा के सत्र में प्रस्तुत किया और 22 जुलाई के दिन संविधान सभा ने उसे स्वीकृत किया। तीन रंगों के इस झंडे में बीच वाली सफेद पट्टी पर चरखे के प्रतीक के रूप में चरखे का चक्र अंकित किया गया था। संविधान बनने से पहले ही राष्ट्रध्वज को स्वीकृत करने की अनिवार्यता राष्ट्रध्वज के महत्व को रेखांकित करती है। 22 जुलाई, 1947 का दिन महत्वपूर्ण होने का यही कारण है।

फ्लैग कमेटी द्वारा संस्तुत ध्वज-1931 जिसका इस्तेमाल कभी नहीं हुआ

सन् 1931 में आई.एन.सी. द्वारा अपनाया गया ध्वज

15 अगस्त और 26 जनवरी की पृष्ठभूमि

सत्ता हस्तांतरण की तारीख बदलने का कारण भी कुछ रहस्यभरा ही था। उस रहस्य को जानना भी जरूरी है। ब्रिटिश प्रधानमंत्री क्लेमेंट एटली ने 20 फरवरी, 1947 को एक अधिनियम जारी किया, जिसमें ब्रिटिश सरकार जून 1948 में सत्ता का हस्तांतरण कर भारत को स्वाधीन कर देगी, ऐसा निर्देश था। इसी बीच, द्वितीय विश्व युद्ध में जापान का आत्मसमर्पण कराने वाले माउंटबेटन ने रानी एलिजाबेथ को यह सुझाव दिया कि हमें इतने लंबे समय तक भारत का बोझ क्यों ढोना है? जापान का आत्मसमर्पण 15 अगस्त, 1945 को कराया गया था, अब 1947 की 15 अगस्त को भारत का विभाजन कर हम सत्ता का हस्तांतरण कर सकते हैं। रानी मान गईं और तदनुसार, भारतीय स्वाधीनता अधिनियम 1947 भारत भेज दिया गया। यही कारण है कि सन् 1948 जून से 10 मास पूर्व ही हमें तथाकथित स्वाधीनता प्राप्त हुई। इस घटना के लगभग 17 वर्ष पूर्व, दिसंबर 1929 में कांग्रेस का अधिवेशान लाहौर में हुआ था, जिसमें संपूर्ण स्वतंत्रता की माँग करने वाला प्रस्ताव पारित किया गया था। भारत की आम जनता तक यह संदेश पहुँचाने के लिए अगले महीने का अंतिम रविवार निर्धारित किया गया। वह रविवार था—26 जनवरी, 1930 का दिन। यही तारीख स्वतंत्रता दिवस के रूप में प्रतिवर्ष मनाई जाने लगी। 15 अगस्त, 1947 की स्वाधीनता के बाद 26 जनवरी, 1948 एवं 1949 तक संविधान, राष्ट्रगान, राष्ट्र-चिह्न का निर्धारण करना तथा अपनाये गए राष्ट्र-ध्वज को संवैधानिक मान्यता प्रदान करना जरूरी था। संविधान के प्रारूप समिति के गठन, 28 अगस्त, 1947 से लेकर संविधान को आत्मार्पित करने के दिन, 26 नवंबर, 1949 के भीतर यह होना अनिवार्य था। राष्ट्रीय चिह्न के नाते अपनाये गए अशोक स्तंभ में 24 सलाखों वाला जो चक्र लिया गया है इस चक्र को तिरंगे में सफेद रंग की पट्टी पर चरखे के स्थान पर अंकित किया गया और यही भारत का राष्ट्रीय ध्वज बना। त्याग के प्रतीक के रूप में भगवा रंग को ऊपरी स्थान, शांति के प्रतीक सफेद रंग को बीच का स्थान, संपन्नता का प्रतीक हरे रंग को तीसरा अर्थात आधारभूत स्थान और पराक्रम का प्रतीक अशोक चक्र को मध्यवर्ती स्थान देकर राष्ट्रीय ध्वज को गरिमा प्रदान की गई है। इसका सम्मान करना हर नागरिक का परम कर्तव्य है।

चंद्रविजय की 56वीं वर्षगाँठ

चाँद पर पहला कदम

मानव सदियों से शीतल चाँदनी बिखेरते, मन को मोहते और कल्पनाओं में नए रंग भरते चाँद तक पहुँचने का सपना देखता रहा। इस सपने को साकार करने के लिए तत्कालीन सोवियत संघ ने 4 अक्तूबर, 1957 को पहली बार स्पुतनिक-1 सफलतापूर्वक अंतरिक्ष में भेज दिया। अगले ही माह 3 नवंबर, 1957 को उसने लाइका और फिर 12 अप्रैल, 1961 को अंतरिक्ष में पहला मानव यूरी गागरिन को भेज दिया।

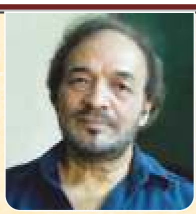

देवेंद्र मेवाड़ी

वरिष्ठ लेखक तथा विज्ञान कथाकार श्री देवेंद्र मेवाड़ी उन विरले साहित्यकारों में से हैं, जो विज्ञान और साहित्य, दोनों क्षेत्रों से अभिन्न और आत्मीय रूप से जुड़े हैं। एक ओर, जहाँ वे विगत 50 वर्षों से आमजन के लिए विज्ञान लिख रहे हैं, वहीं दूसरी ओर, अपनी विज्ञान कथाओं और मार्मिक संस्मरणों से साहित्यिक रचनाधर्मिता में सक्रिय हैं।

वे साहित्य की कलम से विज्ञान लिखते हैं, जिससे उनका लिखा विज्ञान किस्से-कहानी की तरह रोचक लगता है। इनकी प्रमुख कृतियाँ हैं—'विज्ञान और हम', 'विज्ञाननामा', 'सौरमंडल की सैर', 'मेरी विज्ञान डायरी', 'मेरी प्रिय विज्ञान कथाएँ', 'फसलें कहें कहानी', 'विज्ञान बारहमासा' आदि। विज्ञान लेखन के लिए इन्हें अनेक राष्ट्रीय पुरस्कारों से सम्मानित किया गया है। 25 से अधिक पुस्तकें प्रकाशित।

संपर्क : मोबाइल— 9818346064
ईमेल— dmewari@gmail.com

सोवियत संघ की इन एक के बाद एक तीन सफल उड़ानों ने अंतरिक्ष की दौड़ के नए युग का शुभारंभ कर दिया। उस दौर में अमेरिका और तत्कालीन सोवियत संघ, दोनों महाशक्तियों के बीच अंतरिक्ष उड़ान की जबरदस्त होड़ शुरू हो गई थी। सोवियत संघ अंतरिक्ष की सरहद को छू चुका था, इसलिए इन दोनों महाशक्तियों की नजर चाँद पर टिक गई। दोनों देशों ने चाँद पर मानव भेजने के मंसूबे बाँध लिये और इन्हें पूरा करने के लिए जोर-शोर से तैयारियाँ शुरू कर दीं।

मानव को चाँद पर भेजने से पहले चाँद की यात्रा के खतरों का पता लगाना जरूरी था। इसलिए पहले मानवरहित अंतरिक्षयान भेजे गए। चंद्रमा के पास तक ऐसे वैज्ञानिक उपकरण भेजने की योजना बनायी गई, जिनसे विकिरण, तापमान और क्षुद्र उल्काओं का पता लगाया जा सके।

25 मई, 1961 को अमेरिका के तत्कालीन राष्ट्रपति जॉन एफ. केनेडी ने पूरे राष्ट्र का मनोबल बढ़ाने के लिए अमेरिकी अंतरिक्ष एजेंसी 'नासा' को चाँद पर मानव उतारने और उसे सकुशल वापस पृथ्वी पर लौटाने की जिम्मेदारी सौंप दी। उन्होंने अमेरिकी संसद में 25 मई, 1961 को घोषणा कर दी कि 'इस दशक के बीतने से पहले राष्ट्र को चंद्रमा पर मानव उतारने और उसे पृथ्वी पर सकुशल वापस लाने के लक्ष्य को पूरा करने का संकल्प करना होगा।' इससे चंद्रमा के अध्ययन और समानव उड़ान की योजनाएँ बनाने में तेजी आ गई।

चाँद पर पहुँचने के लिए अमेरिका ने पायनियर, रेंजर, लूनर आर्बिटर और सर्वेयर अंतरिक्षयान भेजे। इन अंतरिक्षयानों से अंतरिक्ष और चंद्रमा के बारे में महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त हुई।

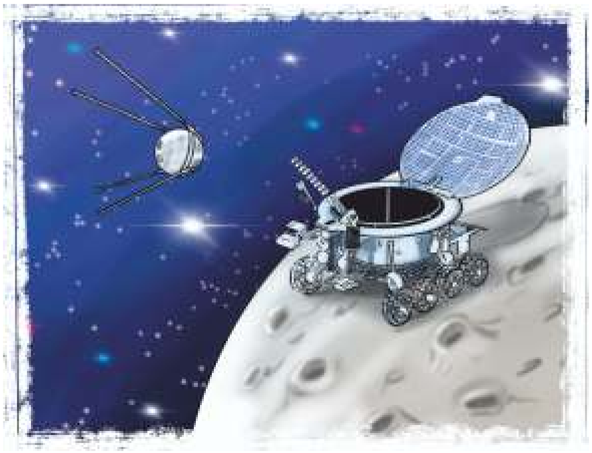

उधर, अपनी सफल अंतरिक्ष उड़ानों से उत्साहित सोवियत संघ का भी अब एक ही लक्ष्य था—चाँद। उसने भी चाँद तक पहुँचने के लिए लूना शृंखला के चौबीस और जोंद शृंखला के सात मानव रहित, स्वचालित अंतरिक्षयान भेजकर बहुमूल्य जानकारी हासिल कर ली। यहाँ तक कि चाँद की मिट्टी और पत्थरों के नमूने भी प्राप्त कर लिये।

महत्वाकांक्षी अपोलो कार्यक्रम

और फिर शुरू हुआ अमेरिका का महत्वाकांक्षी अपोलो कार्यक्रम। चाँद पर पहले पहुँचने की होड़ में अमेरिका ने अपनी पूरी प्रौद्योगिक ताकत लगा दी। सोवियत संघ के यूरी गागरिन की अंतरिक्ष यात्रा के माह भर के भीतर ही उसने भी 5 मई, 1961 को अपने पहले अंतरिक्ष यात्री एलन बी. शेपर्ड जूनियर को अंतरिक्ष में भेज दिया।

चाँद पर मानव को उतार तो दिया जाए, लेकिन सवाल यह था कि वहाँ तक उसे भेजा कैसे जाए? तब तक उपलब्ध रॉकेटों में इतना दम नहीं था कि वे पृथ्वी से औसतन 3,84,000 कि.मी. दूर चाँद तक अंतरिक्षयान को ले जा और ला सकें। ऐसा शक्तिशाली रॉकेट यान चाहिए था, जो अंतरिक्षयान को करीब 40,000 कि.मी. प्रति घंटा के वेग से पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण से निकालकर चाँद तक की लंबी दूरी सफलतापूर्वक तय कर सके। इसके लिए शक्तिशाली सैटर्न-5 रॉकेट को चुना गया। चाँद पर सुरक्षित रूप से उतरने और फिर वापस मुख्य यान तक आने के लिए चंद्रयान यानी 'लूनर माड्यूल' का निर्माण किया गया।

तीस अंतरिक्षयात्रियों को गहन प्रशिक्षण दिया गया। इस तरह, अपोलो अभियान के लिए प्रशिक्षित अंतरिक्ष यात्रियों की पूरी फौज खड़ी हो गई। अंतरिक्ष यात्रियों का कड़ा प्रशिक्षण जारी रहा। उन्हें 'लूनर मॉड्यूल' के नमूने में चाँद की जैसी रूखी-सूखी सतह पर उतरने का बार-बार अभ्यास कराया गया।

अपोलो विमान की शुरुआत एक भयानक दुर्घटना से हुई। अपोलो-1 अंतरिक्षयान 21 फरवरी, 1967 को छोड़ा जाना था, लेकिन केबिन में आग लग जाने के कारण 27 जनवरी, 1967 को उसके चालक दल के तीनों सदस्य शहीद हो गए। अपोलो-2 और अपोलो-3 नहीं छोड़े गए। अपोलो 4, 5 और 6 का परीक्षण मानवरहित उड़ान के रूप में किया गया।

इन परीक्षणों की सफलता से उत्साहित होकर अमेरिकी अंतरिक्ष एजेंसी 'नासा' ने अपोलो-7 समानव अंतरिक्ष उड़ान की घोषणा कर दी। अपोलो-7 अंतरिक्ष में 11 दिन रहा और उसने पृथ्वी की 260 बार परिक्रमा की। अंतरिक्ष से पृथ्वी पर पहली बार टेलीविजन पर सजीव दृश्य प्रसारित किये गए।

अपोलो-8 अंतरिक्षयान 21 दिसंबर, 1968 को चाँद की ओर रवाना किया गया। वह चाँद की कक्षा में पहुँचा और उसके अंतरिक्ष यात्रियों ने क्षितिज पर उगती हुई पृथ्वी का रोमांचक दृश्य देखा। अपोलो-8 की इसी उड़ान से दुनिया के करीब 100 देशों में लोगों ने जीवन में पहली बार टेलीविजन पर इतने निकट से चाँद का रूखा-सूखा और दागदार चेहरा देखा।

अपोलो-9 अंतरिक्षयान ने 3 मार्च, 1969 को चाँद की ओर उड़ान भरी। इस उड़ान में अंतरिक्ष यात्रियों ने चंद्रयान को मुख्य यान से अलग करके दूर तक उड़ाया और फिर मुख्य यान से सफलतापूर्वक जोड़ दिया।

अपोलो-10 ने 18 मई, 1969 को उड़ान भरी और चाँद की कक्षा में पहुँचकर उसके अंतरिक्ष यात्रियों ने सतह पर उतरने संबंधी कई परीक्षण किए। उन्होंने अगले अपोलो अंतरिक्षयान के चाँद की सतह पर उतरने के लिए चयनित स्थान 'सी ऑफ ट्रैंक्विलिटी' की तस्वीरें भी लीं। अपोलो-10 भी सफलतापूर्वक पृथ्वी पर लौट आया।

चाँद पर पहला कदम

16 जुलाई, 1969 का दिन था। अमेरिका के अंतरिक्ष केंद्र केप केनेडी में अपोलो-11 अंतरिक्षयान चंद्रमा की ओर कूच करने के लिए लॉन्चिंग पैड पर तैयार खड़ा था। यान के कमांडर नील ए. आर्मस्ट्रांग और उनके साथी अंतरिक्ष यात्री माइकल कोलिंस तथा एडविन ई. एल्ड्रिन यानी 'बज एल्ड्रिन' कॉकपिट में बैठे। फिर शक्तिशाली

सैटर्न-5 रॉकेट भयंकर गर्जना के साथ, आग की लपटें छोड़ते हुए अपोलो-11 अंतरिक्षयान को लेकर चाँद की ओर रवाना हो गया। उसके कमांड माड्यूल का नाम 'कोलंबिया' और चंद्रमा की सतह पर उतरने वाले चंद्रयान का नाम 'ईगल' रखा गया था।

"नील आर्मस्ट्रांग ने सतह पर अपना पहला कदम रखने के बाद कवियों की कल्पनाओं के उस चाँद की सतह को निहारा और कहा, "यहाँ आस-पास बड़े-बड़े पत्थर दिखाई देते हैं। चंद्रमा की सतह बहुत सख्त है और यहाँ की मिट्टी रेगिस्तान जैसी है।" एडविन बज एल्ड्रिन ने भाव-विभोर होकर कहा, "दृश्य बहुत सुंदर है। जहाँ हम उतरे हैं, उससे कुछ दूरी पर हमें बैंगनी रंग की चट्टान दिखाई दी।"

यात्रा पूरी करके अपोलो-11 अंतरिक्षयान चंद्रमा की कक्षा में पहुँचा। माइकल कोलिंस ने कोलंबिया परिक्रमा यान की कमान सँभाली और आर्मस्ट्रांग तथा बज एल्ड्रिन रेंगकर उससे जुड़े चंद्रयान ईगल में पहुँचे। ईगल कोलंबिया से अलग हुआ। तय कार्यक्रम के अनुसार नील आर्मस्ट्रांग ने रात 1 बजकर 47 मिनट पर चंद्रयान ईगल को, चाँद की सतह पर चट्टानों से बचाते हुए 'सी ऑफ ट्रैंक्विलिटी' क्षेत्र में सफलतापूर्वक उतार दिया। दोनों अंतरिक्ष यात्रियों ने अपने पिट्ठू कसे और वे चाँद पर चहलकदमी करने को तैयार हो गए।

नील आर्मस्ट्रांग ने चंद्रयान का हैच खोला, पोर्च पर खड़ा हुआ और धीरे-धीरे सीढ़ी से उतरकर 8 बजकर 26 मिनट पर अपना बायाँ कदम चाँद की सतह पर रखते हुए कहा, "यद्यपि मानव का यह एक छोटा-सा कदम है, लेकिन मानवता के लिए यह बहुत ऊँची छलाँग है।"

प्रथम अंतरिक्ष यात्री नील आर्मस्ट्रांग के चाँद पर चरण रखने के उस दृश्य को दुनियाभर में करोड़ों लोगों ने अपने टेलीविजन सेटों पर देखा। फिर बज एल्ड्रिन बाहर निकले। उन्होंने चाँद की सतह पर एक लेसर परावर्तक उपकरण और भूकंपमापी रखा।

नील आर्मस्ट्रांग ने सतह पर अपना पहला कदम रखने के बाद कवियों की कल्पनाओं के उस चाँद की सतह को निहारा और कहा, "यहाँ आस-पास बड़े-बड़े पत्थर दिखाई देते हैं। चंद्रमा की सतह बहुत सख्त है और यहाँ की मिट्टी रेगिस्तान जैसी है।" एडविन बज एल्ड्रिन ने भाव-विभोर होकर कहा, "दृश्य बहुत सुंदर है। जहाँ हम उतरे हैं, उससे कुछ दूरी पर हमें बैंगनी रंग की चट्टान दिखाई दी। सूर्य के प्रकाश में चाँद की मिट्टी और चट्टानें चमक रही हैं। यह एक शानदार, मगर बिल्कुल खामोश जगह है।"

इस पूरे घटनाक्रम के दौरान, परिक्रमा यान 'कोलंबिया' चाँद की सतह से 96 कि.मी. ऊपर चंद्रमा की परिक्रमा करता रहा। उसकी बागडोर माइकल कॉलिंस सँभाल रहे थे।

नील आर्मस्ट्रांग और एडविन बज एल्ड्रिन ने ढाई घंटे तक चाँद की सतह पर चहलकदमी की। फिर वे 21 किलो 700 ग्राम मिट्टी-पत्थर के नमूने लेकर चंद्रयान ईगल में वापस आ गए। थोड़ा आराम किया। जिस सीढ़ी से वे चाँद पर उतरे थे, उसके पाए पर स्मृति चिह्न के रूप में एक धातु-फलक लगाया। उस पर तीनों अंतरिक्ष यात्रियों और अमेरिका के राष्ट्रपति के हस्ताक्षर थे। साथ ही एक संदेश के शब्द भी उस पर खुदे हुए थे, जिन्हें नील आर्मस्ट्रांग ने जोर से पढ़ा, "यहाँ पृथ्वी ग्रह से आकर मानव ने चाँद पर पहली बार अपने कदम रखे। जुलाई 1969। हम यहाँ समस्त मानव जाति के लिए शांति की कामना लेकर आए।"

21 जुलाई को ईगल ने आकाश में घूम रहे कोलंबिया कमांड मॉड्यूल की ओर उड़ान भरी। ईगल से निकलकर दोनों अंतरिक्ष यात्री कोलंबिया में पहुँचे। ईगल को वहीं छोड़कर अपोलो-11 पृथ्वी की ओर वापस लौटा। चाँद से पृथ्वी की ओर लौटते समय अपोलो-11 अंतरिक्षयान से नील आर्मस्ट्रांग ने कहा—"शुभ संध्या। मैं अपोलो-11 का कमांडर बोल रहा हूँ। करीब सौ वर्ष पहले जूल्स वर्न ने चाँद की यात्रा पर एक पुस्तक लिखी थी। उसकी पुस्तक का अंतरिक्षयान 'कोलंबियाड' फ्लोरिडा से अंतरिक्ष में छोड़ा गया और चाँद की यात्रा पूरी करके प्रशांत महासागर में उतरा। आज के हमारे इस 'कोलंबिया' यान का भी कल प्रशांत महासागर में ही पृथ्वी से मिलन होगा।"

इस तरह, उन तीनों अंतरिक्ष यात्रियों ने अपोलो-11 की इस उड़ान से अंतरिक्ष यात्रा का नया इतिहास रच दिया। उस दिन मानव ने चंद्रमा पर विजय प्राप्त कर ली।

कदम बढ़ चले

चाँद पर पहला कदम रखने के बाद भी चंद्रमा की सतह पर उतरने का सिलसिला निरंतर जारी रहा।

14 नवंबर, 1969 को चार्ल्स कानरेड, रिचर्ड गोर्डन और एलन बीन के चालक दल के साथ 'अपोलो-12' ने चाँद की ओर उड़ान भरी। कॉनरेड और बीन 19 नवंबर, 1969 को चंद्रयान में 'ओसन ऑफ स्टॉर्म्स' क्षेत्र में चाँद की सतह पर उतरे। गोर्डन मुख्य यान में रहे। कॉनरेड और बीन ने चाँद पर दो बार चहलकदमी की, वैज्ञानिक उपकरण लगाए और मिट्टी-पत्थर के तरह-तरह के नमूने जमा किए। दूसरी बार में उस क्षेत्र के चित्र खींचने के साथ-साथ चाँद की मिट्टी-पत्थरों के कुछ और नमूने जमा किए। चाँद की मिट्टी-पत्थरों के 34 कि.ग्रा. नमूनों के साथ वे मुख्य यान में वापस आए। चंद्रयान इंट्रेपिड को जानबूझकर चंद्रमा की सतह से टकराया गया, जिसके कंपनों को भूकंपमापी ने पृथ्वी पर भेजा। अपोलो-12 भी सकुशल धरती पर लौट आया।

अपोलो-13 अंतरिक्ष यान 11 अप्रैल, 1970 को छोड़ा गया। वह चाँद पर नहीं उतरा। उसके चालक दल के सदस्य थे—जिम लॉवेल,

जैक स्विगर्ट तथा फ्रेड हैसे। उड़ान भरने के 56 घंटे के बाद शॉर्ट सर्किट के कारण ऑक्सीजन के एक टैंक में विस्फोट हो गया। इससे इंजन के साथ ही खाने का सामान भी नष्ट हो गया। ईंधन भी कम रह गया। तब पृथ्वी के नियंत्रण कक्ष ने यान को नए प्रक्षेप पथ पर मोड़ा। चालक दल को रेंगकर चंद्रयान 'एक्वेरियस' में जाने के निर्देश दिए गए। उन्होंने बिजली और ऑक्सीजन का बहुत किफायत से उपयोग किया। बाद में वे कमांड मॉड्यूल 'ओडिसी' में लौटे, चंद्रयान को अलग किया और 'ओडिसी' पृथ्वी के वायुमंडल में बहुत सावधानी से प्रवेश करके 17 अप्रैल, 1970 को प्रशांत सागर में उतर गया। इतनी समस्याओं के बीच भी क्षतिग्रस्त यान अंतरिक्ष यात्रियों को सकुशल लौटा लाया। तत्कालीन राष्ट्रपति निक्सन ने अपोलो-13 मिशन टीम को स्वयं 'मेडल ऑफ फ्रीडम' देकर सम्मानित किया।

31 जनवरी, 1971 को अपोलो-14 को चाँद पर भेजा गया, जिसके चालक दल में एलन बी. शेपर्ड, स्टुअर्ट ए. रूजा और एडगर डी. मिशेल थे। चंद्रयान 'एंटारीज' फ्रा मोरो क्षेत्र में उतरा। शेपर्ड और मिशेल 31 जनवरी से 9 फरवरी, 1971 तक वहाँ रहे। उपकरण, औजार और नमूने ढोने के लिए उनके पास एक 'चंद्र रिक्शा' था। पहली बार उन्होंने पाँच घंटे तक चाँद की सतह पर चहलकदमी करते हुए वैज्ञानिक प्रयोगों के लिए उपकरण लगाए। फिर, सतह पर दूसरी बार चहलकदमी की। चाँद की सतह से उन्होंने दोनों बार में कुल मिलाकर 42 कि.ग्रा. नमूने एकत्र किए और धरती पर सकुशल लौट आए।

अपोलो-15 चाँद की यात्रा पर 26 जुलाई, 1971 को रवाना हुआ। उसके चालक दल के सदस्य थे—डेविड आर. स्कॉट, अल्फ्रेड एम. वोर्डेन तथा जेम्स बी. इर्विन। इस अभियान का चंद्रयान 'फाल्कन' चाँद की पहाड़ियों के निकट हेडले प्लेन में उतरा। स्कॉट और इर्विन चाँद की सतह पर उतरे और वहाँ 67 घंटे तक रहे। अपोलो अभियान का यह चौथा चंद्र अवतरण था। इस बार इन दोनों अंतरिक्ष यात्रियों के पास 'लूनर रोवर' नामक चंद्रगाड़ी भी थी। चाँद की सतह पर उन्होंने चंद्रयान से 10 कि.मी. दूर तक घूम-फिरकर अन्वेषण कार्य किया। वे पहाड़ी ढलानों पर एक घंटे में 8 कि.मी. ऊपर-नीचे चले। चंद्रगाड़ी पर लगा कैमरा पृथ्वी पर चित्र भेजता रहा। मिट्टी-पत्थरों के 77 कि.ग्रा. नमूने जमा करके वे चंद्रयान से वापस मुख्य यान में पहुँचकर पृथ्वी पर लौट आए।

16 अप्रैल, 1972 को अमेरिकी अंतरिक्ष यात्री जॉन डब्लू. यंग, थॉमस के. मटिंग्ली और चार्ल्स एम. ड्यूक को लेकर 'अपोलो-16' ने चाँद की ओर उड़ान भरी। वहाँ पहुँचकर यंग और ड्यूक चंद्रयान 'ओरायन' में बैठकर सी ऑफ ट्रैंक्विलिटी के दक्षिण-पश्चिम में देस्कार्तीज पहाड़ी क्षेत्र में उतरे। वहाँ 71 घंटे बिताए। उन्होंने चंद्रगाड़ी में 27 कि.मी. यात्रा की और 97 कि.ग्रा. नमूने एकत्र किए। अपोलो-16 अभियान पूरा करके सकुशल पृथ्वी पर लौट आया।

चंद्रमा के अध्ययन के लिए अपोलो-17 की उड़ान अपोलो अभियान की अंतिम उड़ान थी। अपोलो-17 अंतरिक्षयान 7 दिसंबर, 1972 को छोड़ा गया। इसके चालक दल में थे—यूजीन ए. सेरनन, रोनाल्ड ई. इवांस और भूगर्भ विज्ञानी हैरिसन एच. श्मिट। अंतरिक्ष यात्रियों में पहली बार एक भूगर्भविज्ञानी को शामिल किया गया था। सेरनन और श्मिट को लेकर चंद्रयान 'चैलेंजर' टॉरस-लिट्रो घाटी में उतरा, जहाँ बहुत काले रंग की सतह दिखाई देती थी। श्मिट का कहना था कि वह स्थान किसी भूगर्भ विज्ञानी के लिए स्वर्ग कहा जा सकता है। चाँद की सतह पर उन्होंने सबसे अधिक समय यानी 75 घंटे बिताए और मिट्टी-पत्थरों के 116 कि.ग्रा. नमूने जमा करके चंद्रगाड़ी में रखे। उन्होंने कुल 35 किलोमीटर की यात्रा की। श्मिट को पत्थर का एक सफेद टुकड़ा मिला। बाद में वह चाँद पर पायी गई प्राचीनतम चट्टान साबित हुई। उसकी उम्र 4.5 अरब वर्ष आँकी गई। श्मिट एक जगह नारंगी रंग की मिट्टी पाकर बहुत खुश हुए, क्योंकि उन्हें लगा, वह शायद हाल ही में यानी केवल 10 करोड़ वर्ष पहले ज्वालामुखी फटने से निकली होगी। चंद्रयान 'चैलेंजर' चंद्रमा की सतह से टेक-ऑफ करके ऊपर उठा तो चंद्रगाड़ी पर लगा कैमरा वह दृश्य पृथ्वी पर दिखाता रहा। इस अभियान में अंतरिक्ष यात्रियों ने चंद्रमा की सतह पर एक स्मृति-फलक भी रखा, जिसमें लिखा था, "मानव ने यहाँ चंद्रमा की खोज का पहला चरण पूरा किया...शांति की जिस भावना के साथ हम यहाँ आए, हमारी कामना है कि वह समस्त मानव जाति के जीवन में झलके।"

अपोलो-17 भी सकुशल धरती पर वापस लौट आया। अपोलो-17 की अंतिम उड़ान के साथ ही चंद्रमा के अध्ययन का यह महत्वाकांक्षी अभियान पूरा हो गया।

अपोलो अंतरिक्ष यानों की शृंखला में 1969 से 1972 के बीच 12 अंतरिक्ष यात्री चाँद पर उतरे। वे कुल मिलाकर 166 घंटे चाँद की सतह पर रहे और कुल 385 कि.ग्रा. चाँद की मिट्टी और चट्टानों के टुकड़े पृथ्वी पर लाए।

अब तक केवल अमेरिका ही अपने अंतरिक्ष यात्री चाँद पर उतार सका है, हालाँकि अमेरिका, तत्कालीन सोवियत संघ, भारत, चीन और जापान अपने मानवरहित अंतरिक्षयान सफलतापूर्वक चाँद की सतह पर उतार चुके हैं।

भारत में हस्तशिल्प
कला भी, आजीविका भी

प्राचीन काल से ही भारतवर्ष में जनसमुदाय अपने मनोरंजन, आजीविका तथा लोकहित हेतु विभिन्न प्रकार की लोक कलाओं तथा हस्त-शिल्पों को अपने में समाये हुए है, एकता की डोर में बँधी ये कलाएँ तथा हस्तशिल्प हमारे जीवन में बहुत गहरे तक बैठी हुई हैं, और समय के सदुपयोग तथा रोजगार का एक महत्वपूर्ण माध्यम बनी हुई हैं। यह हमारी संस्कृति, परंपरा, जन-जीवन की एक महत्वपूर्ण माध्यम बनी हुई है, यदा-कदा आधुनिक वैज्ञानिक तथा औद्योगिक उन्नति के कारण ऐसा लग सकता है कि हस्तशिल्प समाप्त हो रहे हैं, मगर शीघ्र ही यह धारणा गलत सिद्ध हो जाती है, और हमारे हस्तशिल्प

नया आकार एवं आकृति लेकर पुनः दृष्टिगोचर होने लगते हैं। पिछले 25-30 वर्षों में हमारे हस्तशिल्पियों ने पूरी दुनिया में अपनी धाक जमा ली है। उनकी बनायी हुई वस्तुओं की दुनिया के बाजारों में अच्छी माँग है। हमारे घर, बाजार, उत्सव, त्योहार, रस्म, पूजापाठ, धार्मिक स्थलों—सभी जगहों पर हमारे हस्त-शिल्पों का महत्व है और संतोष की बात यह है कि लगातार इनकी माँग बढ़ रही है। अब कलाकार तथा हस्तशिल्प सीधा बाजार से जुड़ा हुआ है। हमारे बर्तन, मिट्टी के शिल्प, परिधान—सभी जगहों में हमारे लोक जीवन, लोक कलाओं की छाप है।

सच पूछा जाए तो हस्तशिल्प वे वस्तुएँ हैं, जो मानव हाथ की कुशलता की कारीगरी से सिरजे गए हैं। ये बहुत साधारण मिट्टी के बर्तन हो सकते हैं, और बहुत ही महँगे आभूषण। वस्तुओं का आकार-प्रकार, उसके साथ जुड़ी सैकड़ों वर्षों की परंपरा, संस्कृति और सभ्यता का महत्व है। हस्तशिल्प हर घर में हर आदमी के अनुकूल होते हैं। अमीर-गरीब सभी के घर में एक से अधिक हस्तशिल्प बने रहते हैं।

प्राचीन काल से ही भारत में निर्मित हस्तशिल्प वस्तुओं की विदेशों में अच्छी माँग रही है। मध्यकाल के अनेक शासकों ने इन कलाओं को आगे बढ़ाया और इस दौर में हस्तशिल्प ललित कला की तरह फला-फूला। अंग्रेजों के शासनकाल में हस्तशिल्प के काम में कमी आई। फिर औद्योगिक क्रांति के कारण पूरे संसार में हाथ की बनी वस्तुओं से लोगों का ध्यान हट गया। हस्तशिल्पियों के लिए यह बड़े दुःख के दिन थे। राज्याश्रय छिन गया था। वे बेचारे इधर-उधर गाँवों में बिखरने लगे। गांधी जी ने स्वतंत्रता आंदोलन के साथ-साथ कुटीर उद्योगों, दस्त कलाओं तथा हस्त शिल्पियों के महत्व को समझा।

यशवंत कोठारी

जन्म : 3 मई, 1950, नाथद्वारा, राजस्थान

शिक्षा : एम.एससी. (रसायन विज्ञान), राजस्थान विश्वविद्यालय, जी.आर.ई., टोफेल (1976), आयुर्वेदरत्न

प्रकाशन : लगभग 2000 लेख, निबंध, कहानियाँ; धर्मयुग, सारिका, राजस्थान पत्रिका, अमर उजाला, मधुमती आदि पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित; आकाशवाणी, दूरदर्शन, इंटरनेट से प्रसारित।

सम्मान : पुस्तक 'मास्टर का मकान' पर राजस्थान साहित्य अकादमी का 'कन्हैयालाल सहल' पुरस्कार (1999-2000), साक्षरता पुरस्कार (1996) सहित अनेक राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय पुरस्कारों से सम्मानित

संप्रति : राष्ट्रीय आयुर्वेद संस्थान, जयपुर में रसायन विज्ञान के एसो. प्रोफेसर एवं 'जर्नल ऑफ आयुर्वेद' तथा 'आयुर्वेद' बुलेटिन के प्रबंध संपादक पद से सेवानिवृत्त।

संपर्क : फोन– 9414461207

1952 में श्रीमती कमला देवी चट्टोपाध्याय की अध्यक्षता में अखिल भारतीय हस्तशिल्प मंडल की स्थापना भारत सरकार द्वारा की गई। मंडल ने देश में बिखरे हस्तशिल्पियों को आधार दिया, अपनी सांस्कृतिक विरासत को सँजोए रखा और धीर-धीरे पूरे देश में एक बार पुनः हस्तशिल्प का बाजार बना। अब निर्यात के अवसर भी खुल गए हैं। करोड़ों रुपये मूल्य के हस्तशिल्प विदेशी बाजारों में निर्यात किए जा रहे हैं। हजारों हस्तशिल्पियों की आर्थिक स्थिति में भी बड़ा सुधार हुआ है। केंद्र व राज्य सरकारें प्रतिवर्ष हस्तशिल्पियों को पुरस्कृत भी करती हैं। हमारे देश के हस्तशिल्प, चटाइयाँ, टोकरियाँ, दरी, गलीचे, वस्त्र तथा इसी प्रकार के अन्य शिल्प हमारे पर्वों, त्योहारों आदि से जुड़े हुए हैं और घरों पर इन त्योहारों के अवसर पर इस प्रकार के शिल्पों को अकसर देखा जा सकता है। भित्ति-चित्र हो या अल्पना या साँझी हों—ये हमारी लोक कलाओं तथा हस्त शिल्पों के अद्भुत उदाहरण हैं। आइए, हस्तशिल्पों की कुछ विस्तार से जानकारी लें।

वस्त्रों से संबंधित शिल्प

कपड़ों की बुनाई, रँगाई, छपाई तथा वस्त्र-निर्माण अत्यंत प्राचीन परंपरा है, क्योंकि मनुष्य ने सर्वप्रथम अपने तन को ढकने के ही प्रयास शुरू किए थे। भौगोलिक, सांस्कृतिक तथा लोकपरंपराओं में विविधता के कारण भारत का वस्त्र-शिल्प भी बहुविध रहा है। बंगाल में सफेदी है तो दक्षिण में रंग ज्यादा गहरे हैं। रंगों के अलावा डिजाइन तथा सामग्री के चयन में भी अद्भुत विविधता है। सूती वस्त्र, रेशमी कपड़े और कमख्वाब, हाथ के वस्त्र, लोक कशीदाकारी, शाल, ऊनी कपड़े तथा जनजातियों के कपड़े। पूरे भारत में वस्त्रों, रेशमी वस्त्रों की डिजाइनें भी बहुत अलग-अलग हैं। रंगों के अलावा, कासीदा काँच के टुकड़े, सोने-चाँदी आदि का प्रयोग भी होता है, एक-एक साड़ी बीस हजार तक की मिल सकती है, अन्य वस्त्रों में पुरुषों के वस्त्रों पर भी काफी ध्यान दिया गया है। छपाई का काम राजस्थान में बगरू, सांगानेर, जयपुर आदि में प्रसिद्ध है।

गलीचे

घरों में फर्श पर बैठना एक परंपरा रहा है, और इस परंपरा हेतु सूती दरियाँ, गलीचे तथा कालीनों का प्रयोग होता था। दरी को मोटे सूती धागों से बुना जाता है, गलीचे और कालीन ऊनी धागों से बुने जाते हैं।

जयपुर, बनारस आदि आज भी अपनी कालीनों के लिए जाने जाते हैं। कालीन बनाने की परंपरा इराक से आई। कालीन बनाने में भारत में कश्मीर, अमृतसर भी प्रसिद्ध रहे हैं। नमदा राजस्थान में मालपुरा में बनते हैं।

आगरा एवं ग्वालियर के गलीचे और कालीनों को अत्यंत उन्नत किस्म का माना जाता है। जेलों में भी दरी की बुनाई होती है और बहुत अच्छी और जटिल डिजाइनें इन जेलों में बनती हैं। दरियों का उपयोग घरों में होता है, जबकि कालीन, गलीचे आदि उत्सवों व सामाजिक समारोहों की शान होते हैं।

मिट्टी के बर्तन

मिट्टी शायद पहली वस्तु है, जिस पर मनुष्य ने अपनी कला प्रतिभा का प्रयोग किया और उसने मिट्टी के ऐसे शिल्प बनाए कि वे धातु, चर्म, लकड़ी का मुकाबला करने लगे। मौलेला (राजस्थान) के मिट्टी के शिल्प अब विश्व प्रसिद्ध हैं।

मिट्टी के बर्तनों की तीन प्रमुख किस्में हैं—(1) पतले बर्तन, (2) रोगन किये हुए बर्तन, (3) रोगन किये हुए उत्कीर्ण बर्तन। हिमाचल प्रदेश, राजस्थान, उत्तर प्रदेश, महाराष्ट्र, हरियाणा के बर्तनों की अलग-अलग शैली है। मिट्टी के बर्तन जलकलश के रूप में प्रमुखता से काम आते हैं। दिल्ली, जयपुर के नीले रंग के बर्तन काफी प्रसिद्ध हैं।

मिट्टी के बर्तनों के अलावा, मिट्टी की मूर्तियाँ भी काफी बनती हैं। पूरे देश के ग्रामीण अंचलों में मिट्टी की मूर्तियों को बनाने की अपनी-अपनी परंपराएँ हैं। स्त्रियाँ और कुम्हार, दोनों ही मिट्टी की मूर्तियाँ बनाने में निपुण होते हैं। तमिलनाडु में भी मूर्ति बनाने की विशिष्ट परंपरा है।

लकड़ी का काम

लकड़ी का काम एक प्रमुख हस्तशिल्प है, पुराणों में भी लकड़ी के हस्तशिल्पों का वर्णन है। जहाँ पर जंगल काफी हैं और लकड़ी सस्ती है, वहाँ पर लकड़ी का फर्नीचर, दरवाजे, खिड़कियाँ तो बनती ही हैं, इसके अलावा, लकड़ी की सजावटी वस्तुएँ भी काफी बनती हैं। नक्काशी किये हुए लकड़ी की मूर्तियाँ, बच्चे के खिलौने तथा मूर्तियाँ बनाने का एक प्रमुख केंद्र है। गणगौर व तीज माता की मूर्ति लकड़ी की ही बनती है। लकड़ी के खिलौनों के लिए उदयपुर प्रसिद्ध है।

धातु का काम

लगभग पाँच हजार वर्षों से भारत में धातु शिल्प का काम हो रहा है। बर्तन, मूर्तियाँ आदि लंबे समय से बन रहे हैं। धातु की चद्दरें, धातु की ढलाई का काम और धातु शिल्प का अलंकरण आदि धातु के कार्यों के प्रमुख अंग हैं। जयपुर, दिल्ली, मुरादाबाद का धातु शिल्प बड़ा प्रसिद्ध है। मीनाकारी का काम भी धातु पर किया जाता है। धातु शिल्प का सौंदर्य देखते ही बनता है। ताँबा, पीतल, काँसा, चाँदी व सोने को धातु के रूप में प्रयुक्त किया जाता है। धातुओं के आभूषण बनाने की भी बड़ी समृद्ध परंपरा रही है। इन धातु के आभूषणों में हीरा, पन्ना, मोती, माणिक, पुखराज आदि लगाकर इनमें मूल्य व सौंदर्य में चार चाँद लगा दिए जाते हैं। आभूषण हमारे हस्तशिल्पियों, सुनारों की परंपरा है। स्त्रियों के आभूषणों की एक लंबी सूची है। इसी प्रकार, पुरुषों के आभूषण बनवाना प्रतिष्ठा का प्रतीक रहा है। सोने के आभूषण, उस पर नक्काशी या हीरे-मोती का प्रयोग बहुत ही महत्वपूर्ण हस्तशिल्प है। अलग-अलग प्रदेशों में गहनों के आकार, आकृति बनाने की विधियाँ भी अलग-अलग हैं।

समाज के निम्न वर्ग में हल्की धातुओं के आभूषण आज भी लोकप्रिय हैं। सबसे बढ़िया डिजाइन नाक के आभूषणों की होती है, क्योंकि वही देखने वाले का सबसे पहले ध्यान खींचती है।

पत्थर की मूर्तियाँ

पत्थर पर नक्काशी, देवताओं की मूर्तियाँ बनाना भी हस्तशिल्प है, जयपुर में बनी देवताओं की मूर्तियाँ पूरे विश्व के मंदिरों में प्रतिष्ठित हैं। जैसलमेर में हवेलियों पर जो पत्थर की नक्काशी है उसे देखने प्रतिवर्ष लाखों लोग जैसलमेर जाते हैं। राजस्थान पत्थर की नक्काशी का प्रमुख केंद्र है। इसी प्रकार, गुजरात में पत्थरों का काम होता है। ताजमहल पत्थर की नक्काशी का अनुपम उदाहरण है, जो राजस्थान के मकराना के संगमरमर से बना है। एक ही पत्थर से विशालकाय मूर्ति का निर्माण करना भी एक बहुत कठिन तपस्या है।

टोकरियाँ, चटाइयाँ आदि बनाने की हस्तकलाओं का भी एक प्राचीन इतिहास रहा है। ये टोकरियाँ बाँस, जंगली बरसाती घास आदि से बनाई जाती हैं। इन टोकरियों के निर्माण में आज भी हजारों लोग लगे हुए हैं, जो अपनी आजीविका इसी प्रकार के कामों से कमा रहे हैं। हस्तशिल्प से ही टोकरियाँ आज कलात्मक बन गई हैं।

हाथी दाँत, हड्डी, सींग की नक्काशी का काम भी भारत में काफी होता है। हाथी दाँत पर चित्रकारी करने वाले चित्रकार राजस्थान में काफी हैं। हड्डी व सींग के टुकड़ों पर भी नक्काशी पूरे भारत में काफी ज्यादा की जाती है। इस प्रकार की बनी वस्तुओं की विदेशों में भी काफी माँग है। नाथद्वारा की चाँदी की नक्काशी और मीनाकारी भी प्रसिद्ध है। पूरे भारत में चित्रकला की एक समृद्ध परंपरा है, जो अलग-अलग शैलियों में विकसित हुई है। चंदन की लकड़ी पर नक्काशी भी दक्षिण भारत में होती है और काफी प्रसिद्ध है। ब्लू पॉटरी, लाख का काम, टेराकोटा, ऊँट के कुप्पें, काँच का काम आदि भी प्रसिद्ध रहे हैं। चमड़े पर नक्काशी, सोने का काम बीकानेर का बड़ा प्रसिद्ध रहा है। राजस्थान में जयपुर का रत्न हस्तशिल्प एक बहुत बड़े व्यवसाय के रूप में सामने आया है।

ऊपर हम कुछ महत्वपूर्ण हस्तशिल्पों का भी बहुत ही संक्षेप में ही वर्णन कर पाए हैं। इन हस्तशिल्पों के अलावा भी गाँवों में महिलाओं द्वारा कई प्रकार के हस्तशिल्प के ये काम रोजगार से सीधे जुड़े हुए हैं। अतः इनका महत्व आजीविका के रूप में भी है। इसी कारण शायद हस्तशिल्प जीवित हैं। सरकारी संरक्षण तथा निर्यात से हस्तशिल्पियों की माली हालत में सुधार हुआ है। कई हस्तशिल्पी अपने-अपने क्षेत्र में नये प्रयोग करते हैं और नवीन रचना करते हैं, जो ललित कला के रूप में प्रसिद्धि पाती हैं। इस तरह, भारतीय हस्तशिल्प कलाओं का एक उज्ज्वल और सुनिश्चित भविष्य है।

महिलाओं के अधिकार और लैंगिक समानता

इस वर्ष अंतरराष्ट्रीय महिला दिवस को संयुक्त राष्ट्र के मानवाधिकार संगठन ने 'महिलाओं के अधिकार, हमारा भविष्य, अभी और तुरंत' के तौर पर मनाने का निश्चय किया है। इसी तरह, हर 26 अगस्त को सभी देशों में महिला समानता दिवस मनाया जाता है और भारत में पिछले वर्ष इसका विषय 'अपने जीवन में आई महिलाओं को धन्यवाद कहिए' रखा गया था, ताकि जीवन के हर क्षेत्र में महिलाओं के योगदान को पहचाना और सराहा जाए। महिला समानता और उनके

अधिकारों पर सबसे महत्वपूर्ण पहल 'पेइचिंग घोषणा' है। 1995 के चौथे विश्व महिला सम्मेलन के अंत में पारित प्रस्ताव को 'पेइचिंग घोषणा' के नाम से जाना जाता है, जिसमें संयुक्त राष्ट्र के 50 वर्ष पूरे होने के अवसर पर महिलाओं के लिए समानता, विकास और शांति का लक्ष्य रखा गया।

नारी समानता का संघर्ष वैसे तो महिलाओं के मताधिकार से आरंभ हुआ माना जाता है, लेकिन आज भी समानता का यह संघर्ष जारी है, भले ही पिछले दशकों की तुलना में महिला समानता की स्थिति पहले से बेहतर हुई है। भारत में ही देखें तो जहाँ एक ओर महिलाओं के उत्पीड़न, उनके शोषण की खबरें हर रोज मीडिया में छाई रहती हैं, वहीं हाल के दिनों में भारत और पाकिस्तान की लड़ाई में सेना और विदेश मंत्रालय की संयुक्त प्रेस वार्ता में दो महिला सैनिकों, कर्नल सोफिया कुरैशी और विंग कमांडर व्योमिका सिंह की उपस्थिति भारत में लगातार बढ़ रही महिला समानता का जीता-जागता उदाहरण है।

वैसे तो पुरुषों और महिलाओं के बीच असमानताएँ हजारों वर्षों से चली आ रही हैं, लेकिन 12वीं शताब्दी में इंग्लैंड के किंग जॉन के दरबारियों ने जब राजा के अधिकारों को कम करके व्यक्ति के अधिकारों की बात उठाई तभी से मानवाधिकार की बात शुरू हुई और एक विशिष्ट प्रस्ताव पारित किया गया, जिसे 'मैग्ना कार्टा' के नाम से जाना जाता है। यह मानवाधिकार का पहला दस्तावेज माना जा सकता है।

कई शताब्दियों बाद, वर्ष 1893 में न्यूजीलैंड वह पहला देश था, जिसने महिलाओं को मताधिकार दिए और उसके बाद ऑस्ट्रेलिया ने ग्रेट ब्रिटेन से आजादी के बाद 1902 में महिलाओं को मताधिकार दिए, हालाँकि वहाँ की स्थानीय महिलाओं को इन अधिकारों से वंचित रखा गया। इसी दौरान फिनलैंड, नॉर्वे, डेनमार्क जैसे देशों में भी महिलाओं को मताधिकार मिला, लेकिन कई जगहों पर वह सभी महिलाओं के लिए नहीं था।

मंजरी जोशी

रेडियो और टेलीविजन में पत्रकार के रूप में विशिष्ट पहचान है। दिल्ली दूरदर्शन में उद्घोषक तथा समाचार वाचक, ऑल इंडिया रेडियो के समाचार सेवा प्रभाग की हिंदी इकाई में आकस्मिक समाचार वाचक रही हैं। ऑल इंडिया रेडियो के राष्ट्रीय चैनल के लिए साप्ताहिक सांस्कृतिक पत्रिका कार्यक्रम 'विविधा' के निर्माण और प्रस्तुतीकरण से भी संबद्ध रही हैं।

शिक्षा : बी.एससी. (ऑनर्स), रसायन विज्ञान, दिल्ली विश्वविद्यालय, स्नातकोत्तर, रूसी भाषा, साहित्य और अनुवाद अध्ययन, जे.एन.यू. तथा आई.आई.एम.सी. से प्रसारण पत्रकारिता में प्रशिक्षण।

प्रकाशन : राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत से बच्चों के लिए 'भारतीय संगीत की परंपरा' शीर्षक पुस्तक प्रकाशित। 'पत्रकारिता और संचार सिद्धांत का परिचय' (2011); 'मीडिया के लिए लेखन' (2011); 'विकास संचार' (प्रो. हेमंत जोशी के साथ) (2011); 'अबाई कुनानबायेव चयनिका' (हेमचंद्र पांडे, वरियाम सिंह और अर्चना उपाध्याय के साथ) (1995) पुस्तकें अन्य प्रकाशनों से प्रकाशित।

संपर्क : मोबाइल— 9871365603

वर्ष 1848 में न्यूयॉर्क में एक सम्मेलन हुआ, जिसमें महिलाओं के अधिकारों और समानता पर विचार किया गया। इसमें एलिजाबेथ स्टेंटन और लुक्रेशिया मौट जैसी महिलाधिकार नेताओं ने शिरकत की। आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि इसके लगभग 70 बरस बाद, अमेरिका में 26 अगस्त, 1920 को महिलाओं को राजनीति में चुनाव में मताधिकार का अधिकार मिला। इसीलिए हर वर्ष 26 अगस्त को हम महिला समानता दिवस के तौर पर मनाते हैं। इसके बाद, 1944 में फ्रांस में और 1945 में इटली में महिलाओं को मताधिकार हासिल हुआ। समाज की राजनीति में मताधिकार हासिल कर लेना महिला समानता की पहली सीढ़ी थी।

दूसरे विश्व युद्ध के बाद, 10 दिसंबर, 1948 को संयुक्त राष्ट्र की महासभा में एक महत्वपूर्ण दस्तावेज पारित किया गया था, जिसे हम मानव अधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा (Universal Declaration of Human Rights) के नाम से जानते हैं। इसमें मनुष्यों के विभिन्न अधिकारों का उल्लेख किया गया है और आज भी जब हम महिलाओं, युवतियों और बच्चों के अधिकारों की बात करते हैं तो उसका आधार यही सार्वभौमिक घोषणा होती है। इसके पहले अनुच्छेद में कहा गया है—सभी मनुष्यों का जन्म स्वतंत्रता, सम्मान एवं बराबरी के अधिकारों के साथ हुआ है। इससे भी अधिक महत्वपूर्ण घोषणा अनुच्छेद दो में हुई है, जहाँ इन स्वतंत्रताओं और अधिकारों को बिना किसी भेदभाव के अर्थात जाति, रंग, लिंग, भाषा, प्रांत, राजनीतिक या अन्य विचारों, राष्ट्रीय या सामाजिक उत्पत्ति, संपत्ति और जन्म जैसे अन्य आधारों पर ध्यान दिए बिना लागू किया जाएगा। इस घोषणा में कुल 30 अनुच्छेद हैं और वे सभी बहुत महत्वपूर्ण हैं।

इसी प्रकार, भारतीय संविधान अपनी प्रस्तावना, मौलिक अधिकारों और राज्य के नीति निदेशक सिद्धांतों में प्रावधानों के माध्यम से लैंगिक समानता की गारंटी देता है। अनुच्छेद 14 कानून की दृष्टि में समानता सुनिश्चित करता है, जबकि अनुच्छेद 15 लैंगिक आधार पर भेदभाव को प्रतिबंधित करता है। अनुच्छेद 51(ए) (ई) नागरिकों को महिलाओं की गरिमा के लिए अपमानजनक प्रथाओं को त्यागने के लिए प्रोत्साहित करता है। निदेशक सिद्धांत, विशेष रूप से अनुच्छेद 39 और 42, समान आजीविका के अवसर, समान वेतन और मातृत्व राहत पर जोर देते हैं।

अब अगर महिलाओं की समानता के अधिकार की चर्चा करें, तो हम देखते हैं कि आज भी कई देशों में महिलाओं को पूरे राजनीतिक अधिकार भी नहीं मिले हैं। अपने ही देश में देखें तो हम पाते हैं कि तमाम उपलब्धियों के बाद भी राजनीतिक प्रक्रिया में महिलाओं की भागीदारी अभी तक कम है। हमारी आजादी की लड़ाई में महिलाओं की भागीदारी को देखते हुए भी यह असंतोषजनक लगता है कि संसद में महिलाओं के प्रतिनिधित्व को लेकर जो आरक्षण का प्रस्ताव रखा गया था वह वर्ष 2023 में पारित हुआ और लागू किया गया है। यह बात अलग है कि पंचायती राज जैसी संस्थाओं में महिलाओं को प्रतिनिधित्व का अवसर मिला है। यह भी द्रष्टव्य है कि शीर्ष राजनीतिक पदों पर हमारे यहाँ अनेक महिलाओं ने अपनी उपस्थिति दर्ज की है और भारत इस मामले में अन्य देशों से बहुत आगे रहा है। पिछले दो-तीन दशकों में यूरोप के अनेक देशों में शीर्ष पदों पर महिलाओं की उपस्थिति रही है, हालाँकि यह भी उतना ही उल्लेखनीय है कि अमेरिका में अब तक कोई महिला राष्ट्रपति नहीं बनी। वैसे, 19वीं सदी से अब तक अनेक महिलाएँ चुनाव में खड़ी हुईं। पिछले चुनाव को ही लें तो उसमें कमला हैरिस डेमोक्रेटिक पार्टी की उम्मीदवार रहीं।

इसके बाद सबसे महत्वपूर्ण मसला नौकरियों में पदों और वेतन संबंधी असमानताओं का है। एक समय में हमारे देश में यह एक महत्वपूर्ण मुद्दा था, लेकिन हमने धीरे-धीरे इस असमानता को दूर किया है, जबकि विश्व में अनेक ऐसे देश हैं, जहाँ आज भी इस प्रकार की असमानताएँ मौजूद हैं।

महिला सशक्तीकरण और आर्थिक स्वतंत्रता की कुंजी शिक्षा है। शिक्षा में असमानता एक अन्य मुद्दा है, जिसमें आज भी कई देशों में महिलाओं को शिक्षा के संपूर्ण अवसर नहीं मिल पाते। हमारे देश में भी पिछले कई दशकों तक लड़कियों को प्राथमिक या माध्यमिक स्तर तक पढ़ने के बाद आगे की शिक्षा के अवसर नहीं मिलते थे और उन्हें मनपसंद उच्च शिक्षा पाने के लिए बहुत संघर्ष भी

करना पड़ता था। इसका उल्लेख प्रसिद्ध पर्वतारोही संतोष यादव ने 'जब हम बच्चे थे' नामक पुस्तक में अपनी जीवनी में बहुत मार्मिक ढंग से किया है। बाल विवाह तो अब गैर-कानूनी घोषित कर दिये गए हैं, तब भी भारत के अनेक हिस्सों में लड़कियों की शादी कम उम्र में ही कर दी जाती है, जिससे लड़कियों को उच्च शिक्षा से दूर रहना पड़ता है।

प्रसव के दौरान जच्चा-बच्चा स्वास्थ्य भी एक बड़ी समस्या है। अनेक देशों में तो स्थितियाँ बहुत खराब हैं। हालाँकि, हमारे देश में महिला और बाल-स्वास्थ्य के क्षेत्र में बहुत सार्थक पहल की गई है और यहाँ प्रसव के दौरान होने वाली मृत्यु संख्या में कमी आई है, लेकिन वैश्विक स्तर पर विश्व के कई देशों में स्थितियाँ खराब हैं।

महिलाओं और युवतियों के संदर्भ में उन पर होने वाली उत्पीड़न और हिंसा की घटनाएँ देश और समाज के विकास में सबसे बड़ी रुकावट हैं, जो हमारे देश में आज भी विद्यमान हैं। महिलाओं को भले ही कार्यक्षेत्र में पुरुषों के साथ कंधे-से-कंधा मिलाकर काम करने के अवसर मिले हैं, पर उनको अपने कार्यस्थलों पर अनेक प्रकार के उत्पीड़न का शिकार होना पड़ता है। पहले तो इस प्रकार की घटनाओं की रोकथाम करने का कोई उपाय भी नहीं था, लेकिन यह महत्वपूर्ण है कि पिछले कुछ वर्षों से लगभग हर एक कार्यालय में महिलाओं के उत्पीड़न संबंधी मामलों की आंतरिक जाँच समितियाँ बनी हैं। उनकी वजह से ऐसे मामलों में कड़ी कार्यवाही होने से महिलाओं के उत्पीड़न में कमी आई है। इसके अतिरिक्त, राष्ट्रीय और राज्य स्तर पर महिला आयोग गठित किये गए हैं, जो कमोबेश ऐसे मामलों पर संज्ञान लेते हैं और पीड़िता को न्याय दिलाने का प्रयास करते हैं।

पिछले दो दशकों में सूचना और दूरसंचार प्रौद्योगिकी में जो परिवर्तन हुए इसका लाभ सभी देशों को मिला। सूचनाओं का आदान-प्रदान संभव हुआ, ऑनलाइन खरीदारी और यूपीआई से लेन-देन संभव हुआ। लेकिन तेजी से विकसित हुए फेसबुक, ट्विटर, इंस्टाग्राम और व्हॉट्सएप जैसी सोशल नेटवर्किंग साइट्स और इंटरनेट के दुरुपयोग के कारण महिलाओं के प्रति साइबर क्राइम की घटनाएँ बढ़ती चली गईं। महिलाओं और बच्चों को प्रदर्शित करने वाली पोर्नोग्राफी में बढ़ोतरी हुई और महिलाओं की ट्रोलिंग के मामले भी सामने आए।

ऑनलाइन में इस तरह की घटनाएँ महिलाओं, युवतियों और बच्चों के सम्मान और शांतिपूर्वक जीवन व्यतीत करने के अधिकार का उल्लंघन है। इस प्रकार की हिंसा भले ही इनलोगों को शारीरिक क्षति नहीं पहुँचाती, पर वह इनके व्यक्तित्व पर अनेक गंभीर घाव करती जाती है, जिससे उनका जीवन जीना दुष्कर हो जाता है।

कुल मिलाकर देखें, तो 2025 में अंतरराष्ट्रीय महिला दिवस में तय किये गए 'अभी और तुरंत' के नारे से ही यह स्पष्ट हो जाता है कि दो शताब्दियों से अनवरत जारी संघर्ष के बावजूद, महिलाओं के अधिकार और लैंगिक समानता जैसे मुद्दे आज भी ज्वलंत हैं। हाल ही में संयुक्त राष्ट्र मानवाधिकार के प्रमुख वॉकर टर्क ने महिलाओं के अधिकारों पर कुछ महत्वपूर्ण बातों पर बल दिया है। वह कहते हैं कि महिलाओं और युवतियों पर होने वाली हिंसा मानव अधिकारों के उल्लंघनों में सबसे अधिक व्याप्त उल्लंघन हैं। लगभग हर तीन महिलाओं में से एक ने अपने जीवन में इस प्रकार की हिंसा देखी होती है। महिलाओं के प्रति सभी प्रकार के भेदभाव को दूर करने के समझौते और महिलाओं के विरुद्ध हिंसा समाप्ति की 1993 की संयुक्त राष्ट्र घोषणा जैसे अनेक अंतरराष्ट्रीय समझौतों में महिलाओं को हिंसामुक्त जीवन जीने के अधिकार की हिमायत की गई है। वह आगे कहते हैं महिलाओं पर होने वाली हिंसा रोकना मानवाधिकार का महत्वपूर्ण दायित्व है। उनके अनुसार वर्तमान समय में विश्व में लगभग 58% महिलाएँ और युवतियाँ ऑनलाइन उत्पीड़न की शिकार हैं।

महिला सशक्तीकरण के संदर्भ में वह कहते हैं कि गर्भनिरोधक साधनों की उपलब्धि की वजह से बच्चे पैदा करने पर नियंत्रण लगा है और अब महिलाएँ मातृत्व के अलावा जीवन और सामाजिक कामकाज में भागीदारी निभा पा रही हैं। असुरक्षित गर्भपात महिला मृत्यु का एक प्रमुख कारण होता है, जिसकी वजह से विश्वभर में 13% महिलाओं की मृत्यु होती है।

आज जब विश्वभर में सतत् विकास की बात हो रही है, तब महिलाओं के अधिकारों की रक्षा हम सभी को बेहतर भविष्य की ओर ले जा सकती है। इसलिए यह आवश्यक हो जाता है कि हम समझें कि महिलाओं पर होने वाली हिंसा और उत्पीड़न जारी हैं और बढ़ रहे हैं। महिलाओं और युवतियों को हिंसामुक्त रहने का अधिकार है। इस प्रकार के उत्पीड़न और हिंसा से महिलाओं और युवतियों के शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य पर बुरा असर पड़ता है। समाज के आर्थिक और सामाजिक विकास में उनकी भागीदारी पर भी बुरा असर पड़ता है। इसीलिए समाज को इस प्रकार की हिंसा को रोकने के प्रयास करने चाहिए। जब महिलाओं के पास विकल्प होते हैं तब हम बेहतर समाज बना पाते हैं।

महिला अधिकार, सशक्तीकरण और लैंगिक समानता का संघर्ष अभी अपने अंत से बहुत दूर है। इसके कई मुद्दों पर तो कानून से न्याय दिलाया जा सकता है, लेकिन महिलाओं पर होने वाली घरेलू हिंसा, बलात्कार, छेड़-छाड़ आदि इनमें सबसे गंभीर हैं। ऐसी हिंसा और उत्पीड़न पर यह नारा बिल्कुल सही है, जो कहता है महिलाओं को हिंसामुक्त जीवन जीने का अधिकार तो 'अभी और तुरंत' मिलना चाहिए, वरना उनके राजनीतिक और सामाजिक समानता के अधिकारों का कोई मतलब नहीं रह जाएगा। यह ध्यान रखने योग्य है, जहाँ नारी का सम्मान नहीं हो वह समाज कभी भी सामाजिक और सांस्कृतिक तौर पर विकास नहीं कर सकता।

प्राचीन भारतीय पांडुलिपियों में विज्ञान

भारत में प्राचीन पांडुलिपियाँ कितनी हैं, इसका सुसंगत अनुमान कठिन है। अनेक पांडुलिपि संग्रहण व संरक्षण संस्थान ज्ञान-विज्ञान की पांडुलिपियों से भरे पड़े हैं। कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय के संस्कृत विभाग के निदेशक डॉ. सुरेंद्रमोहन मिश्र कहते हैं कि लगभग डेढ़ करोड़ पांडुलिपियाँ उपलब्ध हैं। माननीय राज्यसभा सांसद श्री राकेश सिन्हा द्वारा संसद में पूछे गए एक प्रश्न के उत्तर में कहा गया था कि ब्रिटेन के संग्रहालय में मुख्य रूप से चार लाख पांडुलिपियाँ आज भी सुरक्षित हैं। यद्यपि, वहाँ से अब तक 50 हजार पांडुलिपियाँ मँगाई जा चुकी हैं। इन पांडुलिपियों में खगोल, गणित, ज्योतिष, प्रौद्योगिकी, चिकित्सा, रसायन, धातु विज्ञान, खेती-किसानी, अस्त्र-शस्त्र और आवागमन

प्रमोद भार्गव

जन्म : 1956, अटलपुर, शिवपुरी, म.प्र.

शिक्षा : हिंदी साहित्य में स्नातकोत्तर

प्रकाशन : 'प्यासभर पानी', 'पहचाने हुए अजनबी', 'शपथ-पत्र एवं लौटते हुए', 'शहीद बालक', '1857 का लोक-संग्राम और रानी लक्ष्मीबाई' सहित कई पुस्तकें प्रकाशित। वन्य जीवन पर दस लघु-पुस्तिकाएँ प्रकाशित

सम्मान : चंद्रप्रकाश जायसवाल सम्मान, मध्य प्रदेश शासन का रतनलाल जोशी आंचलिक पत्रकारिता पुरस्कार, धर्मवीर भारती सम्मान।

संपर्क : मोबाइल— 9425488224

ई-मेल— pramod.bhargava15@gmail.com

के साधनों से लेकर ईंधन की खोज और मानव मनोविज्ञान तक के धरातल की पड़ताल की गई है। पांडुलिपियों में सामाजिक जीवन के विविध पहलू संरक्षित हैं, इसलिए इनके संरक्षण के उपाय भी संस्कृत के श्लोकों में मिलते हैं,

जलाद्रक्षे तैलाद्रक्षेच्छिथिलबन्धनात।
मूर्खहस्ते न मां दद्यादिति वदाति पुस्तकम्॥

(अर्थात, मुझे जल से, तेल से, ढीले बंधन (जिंद) से बचाएँ। मुझे मूर्ख के हाथ में नहीं थमाना चाहिए, यह पुस्तकें कहती हैं।)

ज्ञान के इस विपुल भंडार से परिचित होने के उपरांत जर्मनी के वेदविज्ञानी मैक्समूलर को कहना पड़ा था कि इस समस्त संसार में ज्ञानियों और पंडितों का देश एकमात्र भारत ही है, जहाँ विपुल ज्ञान-संपदा हस्तलिखित ग्रंथों में सुरक्षित है।

प्राचीन भारतीय पांडुलिपियाँ कितनी महत्वपूर्ण हैं, इस सिलसिले में एक प्रसंग यहाँ उद्घाटित है। संस्कृत के भोपाल के बड़े विद्वान और संस्कृत विश्वविद्यालय, दिल्ली के कुलपति रहे डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी को लंदन की इंडिया हाउस लाइब्रेरी में उपलब्ध सुंदरकवि द्वारा रचित 'नाट्य-प्रदीप' पांडुलिपि की आवश्यकता थी। उक्त पुस्तकालय में उपलब्ध सूची की पुस्तकों में इस पांडुलिपि का नाम अंकित है। त्रिपाठी जी के मित्र पाठक जी लंदन जाते-आते रहते थे। अतएव, उन्होंने पांडुलिपि लाने का दायित्व पाठक जी को सौंप दिया। पाठक जी ने लंदन से लौट आने पर त्रिपाठी जी को 'नाट्य-प्रदीप' ग्रंथ की पांडुलिपि एक गोल डिब्बी में दी। त्रिपाठी जी अचंभित हुए। तब पाठक जी ने बताया कि इस डिब्बी में एक माइक्रो चिप है। इसे माइक्रो फिल्म रीडर के माध्यम से कंप्यूटर से इसके प्रिंटआउट निकल आएँगे। भोपाल में तो यह काम संभव नहीं हुआ, तब उन्होंने दिल्ली के राष्ट्रीय कला केंद्र में जाकर प्रिंट निकलवाए।

चार-पाँच सौ पृष्ठ की नागरी लिपि में हस्तलिखित पांडुलिपि उनके हाथों में थी। उन्हें संदेह हुआ कि 'नाट्य-प्रदीप' तो इतने पृष्ठों की नहीं है, फिर यह क्या? परंतु भोपाल आने पर जब उन्होंने पांडुलिपि पढ़ना प्रारंभ किया तो उनका संदेह सच निकला। वह नाट्य-प्रदीप की पांडुलिपि नहीं थी। हालाँकि, पांडुलिपि के प्रथम पृष्ठ पर शीर्षक व अन्य जानकारियाँ सूची के अनुरूप ही थीं। दरअसल, वह महाकवि दंडी के 'दशकुमारचरित' के तीसरे खंड की अधूरी प्रति थी। त्रिपाठी जी ने इसे ऊँचे पेड़ पर लगा एक फल माना और अध्ययन-मनन में लग गए। अंत में, त्रिपाठी जी ने पूरी पांडुलिपि पढ़ने के बाद निष्कर्ष निकाला कि यह पांडुलिपि उज्जैन के

Taittiriya Samhita, Vedas, Devanagari script, Sanskrit

राजा विक्रमादित्य की कथा है। कालांतर में, उन्होंने इस विक्रमादित्य कथा का गद्यानुवाद करते हुए उपन्यास का रूप दिया। इस उपन्यास को भारतीय ज्ञानपीठ ने प्रकाशित किया है। उपन्यास में खगोलीय घटनाओं और विक्रम संवत् के प्रारंभ होने के विज्ञानसम्मत आख्यान तो हैं ही, विक्रमादित्य के इतिहास नायक होने के तथ्य भी हैं। सच्चाई यह है कि इस औपन्यासिक कथा में ईसा की पहली शताब्दी के भारत की एक व्यापक प्रस्तुति है। इस पांडुलिपि की प्राप्ति की रोचक गाथा उपन्यास की भूमिका में दी गई है। पांडुलिपि के उपन्यास के रूप में प्रकाशन से यह स्पष्ट होता है कि पुरातन ग्रंथों में इतिहास, भूगोल, युद्ध, विज्ञान, समयमान के चित्रण तो हैं ही, भारतीय इतिहास-नायकों की गाथाएँ भी हैं। यही वर्णन कहानियों-किस्सों के रूप में किसी राष्ट्र के विकसित श्रेष्ठतम रूप को सामने लाते हैं।

पांडुलिपियों के रूप में सुरक्षित ग्रंथों के शोध और संग्रह निरंतर होते रहे हैं। 1803 में इन ग्रंथों का सूची-पत्र तैयार करने की पहली बार शुरुआत एशियाटिक सोसायटी ने की थी। इस सोसायटी के चौथे अध्यक्ष एच.टी. कोलब्रुक ने सूची-पत्र तैयार करने के लिए प्रति वर्ष 5-6 रुपये का अतिरिक्त अनुदान का प्रबंध भी कराया। इसी क्रम में, गवर्नर एलफिन्सटन ने जब संस्कृत ग्रंथों का अनुसंधान कराया, तब ज्ञात हुआ कि 1840 में जितने ग्रंथ भारत में पाये गए, उनकी संख्या ग्रीक और लैटिन भाषा के समस्त पश्चिमी और कतिपय एशियाई ग्रंथों से कहीं ज्यादा थे। इसके पूर्व, 1830 में फ्रेडरिक ने 350 संस्कृत ग्रंथों की सूची बनाई थी। 1859 में बेल के शोधानुसार, इन ग्रंथों की संख्या 1300 हो गई। कालांतर में, 1891 आते-आते शियोगेर अलफ्रेस्ट ने जो सूची-पत्र बनाया, उसमें इन संस्कृत पांडुलिपियों की संख्या 32 हजार से ऊपर निकल गई। तदुपरांत, भारतीय विद्वान हरप्रसाद शास्त्री ने 40 हजार पांडुलिपियों और 1916 में राहुल सांकृत्यायन ने 50 हजार ग्रंथों की खोज कर एक अन्य सूची-पत्र बना लिया।

इन सूची-पत्रों की तैयारी के बाद पांडुलिपि शास्त्र के जर्मन ज्ञाता शिलगल ने इन ग्रंथों का विषयवार वर्गीकरण किया। इसी वर्गीकृत अध्ययन से ज्ञात हुआ कि ये ग्रंथ केवल एक विषय, एक धर्म या अध्यात्म मात्र पर केंद्रित नहीं हैं, अपितु इस वर्गीकरण से ग्रंथों के प्रकार और उनमें अंतनिर्हित दर्शन का प्रादुर्भाव हुआ, जिसे तेरह वर्गों में विभाजित किया गया। वैदिक साहित्य अर्थात चार वेद, वेदांग अर्थात शिक्षा, कल्प, निरूक्त, व्याकरण, ज्योतिष और छंद। वेदांगों से आगे पुराण, इतिहास, धर्मशास्त्र, अर्थशास्त्र और काव्यशास्त्र लिखे गए। उपनिषदों के माध्यम से अध्यात्म, खगोल और नैतिकता के दर्शन की स्थापना हुई। इसी क्रम में, जैन और बौद्ध दर्शन से लेकर, चार्वाक दर्शन तक सामने आए। इनमें प्रकृति से लेकर मानव वृत्तियों के उल्लेखों के मनोवैज्ञानिक दृष्टांत हैं और आडंबरों पर प्रहार है।

वर्ष 1981 में भारत की प्राचीनतम बख्शाली पांडुलिपि को प्राचीनतम गणित की पांडुलिपि माना गया है। यह पांडुलिपि खैबर पख्तूनख्वा, पेशावर (पाकिस्तान) के एक किसान को मिली थी। भोजपत्रों पर यह संस्कृत में लिखी गई है। इसके केवल सत्तर पृष्ठ मिले हैं, शेष नष्ट हो गए। इसे नौवीं शताब्दी का लिखा माना जाता है, परंतु जब इसकी लिखावट की ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय और बोडालियन पुस्तकालय के शोधकर्ताओं ने रेडियो कार्बन डेटिंग से परीक्षण किया तो इसे तीसरी-चौथी शताब्दी का होना पाया गया। इस परिणाम से यह निष्कर्ष भी निकाला गया कि ग्वालियर में स्थित मंदिर की दीवार पर उत्कीर्ण शून्य का शिलालेख नौवीं शताब्दी का है, उससे भी पहले की

यह पांडुलिपि है। इसमें एक ऐसे बिंदु का उल्लेख किया गया है, जो 'शून्य' का प्रतिनिधित्व करने वाला अब तक का सबसे प्राचीन प्रतीक है। ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय के प्राध्यापक मार्क्स डू सौतॉय ने प्रतिपादित किया है कि आज हम जिस शून्य का प्रयोग करते हैं, वह प्राचीन भारत में प्रयोग में लाये गए 'बिंदु' से ही विकसित हुआ है।

दुनिया ने मान लिया है कि ऋग्वेद के सूक्त और मंत्र सबसे प्राचीन मौखिक और भोजपत्रों पर लिखित आख्यान हैं। तथापि, 'भृगुसंहिता' भी एक प्राचीन पांडुलिपि है, जिसकी मूल प्रति होशियारपुर में आज भी सुरक्षित है। इसमें ग्रह नक्षत्रों के आधार पर व्यक्ति का भूत और भविष्य बाँचने का दावा किया जाता है। रामधारी सिंह 'दिनकर' ने 'संस्कृति के चार अध्याय' में ऋग्वेद की ऋचाओं को विभिन्न विद्वानों के मतानुसार दो हजार से पचहत्तर हजार वर्ष तक का प्राचीन माना है। इनमें सबसे उत्साहजनक दृष्टिकोण डॉ. अविनाश दत्त का है।

इस पांडुलिपि का आरंभिक लेखन शारदा लिपि में है। यह लिपि 8वीं से 12वीं शताब्दी तक दक्षिण एशिया के उत्तर-पश्चिमी क्षेत्रों और कश्मीर के भूखंडों में प्रचलित थी। शारदा लिपि संस्कृत के निकट मानी जाती है। ऋग्वेद में इन लिपियों के प्रारंभिक विकास के चरण 'पणिय' और 'मग' समुदाय के लोगों के द्वारा किए जाने के उल्लेख हैं। इस पांडुलिपि में गणितीय नियमों, उनमें आने वाली समस्याओं के हल उदाहरणों सहित उपलब्ध हैं। अंकगणित, बीजगणित, रेखागणित और क्षेत्रमिति भी इसमें मिलते हैं। वर्गमूल, घनमूल स्वर्ण की गणना के साथ आय, व्यय, ब्याज और सरल समीकरणों का उल्लेख भी इस पांडुलिपि में है। बख्शाली पांडुलिपि में लिखे जाने से बहुत पहले से ही भारतीय मनीषियों ने इन गणितीय वैदिक ज्ञान के सूत्रों को श्रुति परंपरा से मौखिक रूप में पीढ़ी-दर-पीढ़ी स्मृति में ग्रहण करा दिया था। यही कालांतर में लिखित और मुद्रित रूपों में हमारे समक्ष हैं।

दुनिया ने मान लिया है कि ऋग्वेद के सूक्त और मंत्र सबसे प्राचीन मौखिक और भोजपत्रों पर लिखित आख्यान हैं। तथापि, 'भृगुसंहिता' भी एक प्राचीन पांडुलिपि है, जिसकी मूल प्रति होशियारपुर में आज भी सुरक्षित है। इसमें ग्रह नक्षत्रों के आधार पर व्यक्ति का भूत और भविष्य बाँचने का दावा किया जाता है। रामधारी सिंह 'दिनकर' ने 'संस्कृति के चार अध्याय' में ऋग्वेद की ऋचाओं को विभिन्न विद्वानों के मतानुसार दो हजार से पचहत्तर हजार वर्ष तक का प्राचीन माना है। इनमें सबसे उत्साहजनक दृष्टिकोण डॉ. अविनाश दत्त का है। वे ऋग्वेद को पचास से पचहत्तर हजार वर्ष पुराना मानते हैं। हमारा यहाँ उद्देश्य ऋग्वेद की प्राचीनता सिद्ध करना नहीं है, अपितु ऋग्वेद के मंत्रों में निहित विज्ञान पर दृष्टि डालना है। ऋग्वेद का गहनता से अध्ययन, चिंतन-मनन करते हैं, तो पाते हैं कि विज्ञान के अनेक विषयों के उद्‌गम के पहले स्रोत ऋग्वेद में ही उल्लेखित हैं। यथा—

नाहि वामस्ति दूर के यत्रा रथेन गच्छथः।
अश्विनो सोमिनो गृहम्॥

(ऋग्वेद : 1.20.4)

(अर्थात, हे मनुष्यो! जिस कारण अग्नि और जल के वेग से युक्त किया हुआ रथ अति दूरस्थ स्थानों पर भी जल्दी पहुँचता है, इस शिल्पविद्या को लोगों को सीखना चाहिए।)

वेदा यो वीनां पदमन्तरिक्षेण पतताम्।
वेद नावःसमुद्रियः॥

(ऋग्वेद : 1.25.7)

(अर्थात अंतरिक्ष, भू और समुद्र में जाने-आने वाले यानों की विद्या को सिद्ध करने में जो मनुष्य कुशल होता है, वही उन्हें बनाने में समर्थ हो सकता है।)

यजुर्वेद और अथर्ववेद में ऊर्जा या अग्नि के अनेक रूपों का वर्णन है। यजुर्वेद के एक मंत्र में सौर, आकाशीय और भौतिक ऊर्जा का उल्लेख है। इस मंत्र में पृथ्वी के भीतर ऊर्जा का केंद्र बताया गया है। इसका अभिप्राय यह है कि पृथ्वी के अंदर गैस के रूप में ऊर्जा का भंडार है। यथा—

दिवि ते जन्म, अन्तरिक्षे नाभिः पृथिव्याम् अधि योनिरित्।

(यजुर्वेद : 11.12)

अथर्ववेद में उल्लेख है कि अग्नि जल का पित्त अर्थात ऊष्मा है। इसका अभिप्राय है कि जल में अग्नि सदा विद्यमान है। जिस प्रकार घर्षण अथवा मंथन से दही से घी या दूध से मक्खन निकल आता है, उसी प्रकार, जल में मंथन से अग्नि या ऊष्मा प्रकट होती है। यथा—

अग्ने पित्तम अपामसि।

(यजुर्वेद : 17.6)

(वेदों में अग्नि के प्रथम आविष्कारक ऋषि वैज्ञानिक अथर्व को माना गया है। अथर्व ने सबसे पहले अरणि के वृक्ष से अग्नि खोजी, फिर जल से और बाद में पृथ्वी के गर्भ से गैस के रूप में पुरिष्य अग्नि की खोज की।)

ऋग्वेद के एक मंत्र में विद्युत तरंगों का उल्लेख करते हुए ऊर्जा को अति तीव्रगामी अमर दूत कहा गया है। ऊर्जा की तरंगें समुद्र की लहरों के तुल्य अत्यंत तीव्रता से जाती हैं। यथा—

जीरं दूतम् अमर्त्यम्।
सिन्धोरिव...उर्मयः अग्नेर्भ्राजन्ते अर्चयः॥

(ऋग्वेद : 1.44.11-12)

ऋग्वेद के एक मंत्र के अनुसार 'श्रुत्कर्ण' शब्द से यह संकेत मिलता है कि विद्युत के द्वारा ध्वनि तरंगों का भी संप्रेषण होता है, जिससे दूरस्थ व्यक्ति परस्पर वार्तालाप कर सकते हैं। इसी आधार पर दूर-संचार यंत्रों की प्रक्रिया काम करती है।

हमारे प्राचीन ग्रंथों और पांडुलिपियों में विज्ञान की कितनी महिमा है, इसे जगदीशचंद्र बसु के आविष्कार 'पेड़ों में प्राण' से जानते हैं। बसु ने सैकड़ों पेड़-पौधों पर अध्ययन, चिंतन-मनन व प्रयोग करके जाना कि पेड़ों में प्राण अर्थात चेतना होती है। वे मनुष्य की तरह चैतन्य होते हैं। सबसे ज्यादा प्रयोग उन्होंने छुईमुई (मिमोसा प्युडिका) पर किए। छुईमुई से मामूली स्पर्श भी यह दर्शा देता है कि इस पौधे में जीवन के अंश हैं। इसे छूते ही पत्तियाँ संकुचित होकर परस्पर चिपक जाती हैं और सूरज की पहली किरण का स्पर्श पाते ही जीवंत हो उठती हैं। बसु ने पेड़-पौधों में जीवन होने की वास्तविकता को जानने के लिए इनमें क्रमशः होने वाली वृद्धि को मापने के लिए 'उच्च आवर्धन वृद्धिमापक यंत्र' (हाई मैग्नीफिकेशन क्रेस्कोग्राफ) का निर्माण अपने घर की प्रयोगशाला में किया था।

" अब यह भी ज्ञान में आ गया है कि 800 ईसवी के आस-पास 'आर्यभटीय' का 'जीज जल अर्जभहर' नाम से अरबी में अनुवाद भी हुआ। मध्य एशिया के संस्कृत के विद्वान माने जाने वाले अलबरूनी 1017 से 1030 के मध्य भारत में रहे थे। उन्होंने अपने ग्रंथ 'किताब उल-हिंद' में आर्यभट के सिद्धांतों का अरबी में उल्लेख किया है। संस्कृत से अरबी-फारसी में अनूदित होकर अनेक पांडुलिपियाँ ब्रिटेन, इटली और अन्य पाश्चात्य देशों में पहुँचीं। इनका लैटिन में अनुवाद हुआ। संभव है 15वीं शताब्दी में कोपरनिकस और 16वीं सदी में गैलीलियो ने पृथ्वी गोल है और सूर्य के चारों ओर परिभ्रमण करती है, सिद्धांत की प्रेरणा आर्यभट के सिद्धांतों से ही ली हो? "

बसु को संस्कृत से बहुत मोह था। संस्कृत के अनेक ग्रंथों को उन्होंने पढ़ा था। इसीलिए वे पेड़ों में जीवन की खोज कर पाए थे। बसु अपने द्वारा निर्मित यंत्रों का नाम शुद्ध संस्कृत में रखना चाहते थे, लेकिन वे जानते थे कि ऐसा करने पर पाश्चात्य विद्वान इनका अर्थ गलत करके अनर्थ कर देंगे। यह जानकारी उन्होंने बांग्ला भाषा में लिखे एक लेख में दी है।

महाभारत में पेड़ों को 'चैतन्य योनि' माना गया है। महाभारत के एक श्लोक में कहा गया है, उद्भिज यानी भूमि को फाड़कर निकलने वाले सभी पेड़-पौधों, फसलों, सब्जियों और लताओं में सुख-दुख महसूस करने की संवेदना इस तथ्य का प्रमाण है कि इनमें मनुष्य जैसी चैतन्यता होती है। पंच महाभूतों अर्थात पंचतत्व धरती, आकाश, वायु, जल और अग्नि का वर्णन करते हुए वेद व्यास ने कहा है—

सुखदुःख्योश्च ग्रहणचिन्नस्य च विरोहणात।
जीवं पश्यामि वृक्षणामचैर्तन्यं न विधते॥

अर्थात, वृक्ष अचेतन नहीं हैं, उनमें भी जीवन हैं। वे सभी सुख-दुख का अनुभव करते हैं। चेतन होने के कारण काटे जाने पर उनमें अंकुर प्रस्फुटित हो जाते हैं।

13 अप्रैल, 476 ईसवी में जन्मे आर्यभट ने मात्र 23 वर्ष की आयु में 'आर्यभटीय' ग्रंथ लिख दिया था। इसमें नक्षत्र विज्ञान और गणित से संबंधित 121 श्लोक हैं। आर्यभट ने गणित काल-क्रिया और तीन वृत्त सिद्धांत दिए। आर्यभट विश्व के ऐसे पहले अनूठे खगोलविद् हैं, जिन्होंने पहली बार सुनिश्चित किया कि ग्रहों का एक दिवसीय भ्रमण पृथ्वी द्वारा सूर्य की परिक्रमा लगाने के कारण है। आर्यभट ने ही तय किया कि पृथ्वी सभी दिशाओं में वृत्ताकार तथा अंडाकार है। पृथ्वी अपनी धुरी पर घूर्णन करती है और सूर्य के चारों ओर चक्कर लगाती है।

'आर्यभटीय' ग्रंथ की भास्कर प्रथम ने 'भास्कर आर्यभटीय भाष्य' के नाम से टीका लिखी। अब यह भी ज्ञान में आ गया है कि 800 ईसवी के आस-पास 'आर्यभटीय' का 'जीज जल अर्जभहर' नाम से अरबी में अनुवाद भी हुआ। मध्य एशिया के संस्कृत के विद्वान माने जाने वाले अलबरूनी 1017 से 1030 के मध्य भारत में रहे थे। उन्होंने अपने ग्रंथ 'किताब उल-हिंद' में आर्यभट के सिद्धांतों का अरबी में उल्लेख किया है। संस्कृत से अरबी-फारसी में अनूदित होकर अनेक पांडुलिपियाँ ब्रिटेन, इटली और अन्य पाश्चात्य देशों में पहुँचीं। इनका लैटिन में अनुवाद हुआ। संभव है 15वीं शताब्दी में कोपरनिकस और 16वीं सदी में गैलीलियो ने पृथ्वी गोल है और सूर्य के चारों ओर परिभ्रमण करती है, सिद्धांत की प्रेरणा आर्यभट के सिद्धांतों से ही ली हो?

अभी हम प्राचीन ग्रंथ और पांडुलिपियों में विज्ञान की बात कर रहे थे, लेकिन अब भारतीय ज्ञान परंपरा से अंग्रेजों द्वारा बनाई पांडुलिपि और उसमें अंतर्निहित ज्ञान को ब्रिटेन भेजने की बात करते हैं। जे.बी. कीथ ने 7 सितंबर, 1891 के 'पायनियर' में लिखा है, 'हर कोई जानता है कि शिल्पकार और कारीगर अपने पेशागत रहस्यों को सावधानीपूर्वक छिपाकर रखते हैं। परंतु हिंदुस्तानी कारीगरों को जबरदस्ती मजबूर किया गया कि वे अपने कपड़ों के थानों को धोकर सफेद करने के तरीके और अपने दूसरे औद्योगिक रहस्य मैनचेस्टर वालों को प्रकट कर दें। उन्हें इस हद तक विवश किया गया कि तकनीकी रहस्यों के सूत्रों के सार उन्हें खोलने पड़े। इन सूत्रों के आधार पर इंडिया हाउस महकमे ने एक कीमती संग्रह तैयार किया। इस तकनीकी संग्रह में 700 प्रकार की वस्तुएँ निर्माण की विधियाँ एकत्रित कर 18 बड़ी जिल्दों में तैयार करायी गईं। इसे कई प्रतियों में छापा गया और ब्रिटेन के औद्योगिक घरानों, शिक्षा संस्थानों और तकनीकी विशेषज्ञों को ये प्रतियाँ उपलब्ध करायी गईं। इस उपाय से ब्रिटेन ने एक तीर से दो निशाने साधे—एक, ब्रिटेन के कारीगर तकनीक के जानकार हो गए, और दूसरे, उसी अनुरूप वस्तुओं का निर्माण करने लग गए। पं. सुंदरलाल की पुस्तक 'भारत में अंग्रेजी राज' में इस प्रसंग का वर्णन दर्ज है। इतना महत्वपूर्ण ज्ञान हमारी प्राचीन पांडुलिपियों में दर्ज होने के बावजूद हम आज भी पश्चिम की ओर ताकते रहते हैं।

विलक्षण प्रतिभा के संत स्वामी हरिदास

स्वामी हरिदास विलक्षण प्रतिभा संपन्न संत थे। उन्होंने भारतीय शास्त्रीय संगीत के लिए ऐतिहासिक काम किया। कृष्ण-भक्ति के हरिदासी परंपरा की शुरुआत की, कृष्ण राधा भक्तों के लिए रास लीला नाट्य परंपरा का आविर्भाव किया। त्यागी और विरक्त इतने कि सिर्फ कौपीन, मिट्टी का एक बर्तन, करवा तथा यमुना नदी की मिट्टी—ये तीन चीजें ही अपने पास रखते थे। वह हरदम सोते जागते भगवान विष्णु के अवतार, कृष्ण की भक्ति में लीन रहते थे। उन्होंने अपना घर-द्वार-परिवार सब कुछ त्याग दिया था और वृंदावन में निधिवन में आकर रहने लगे थे। निधिवन में ही उनकी समाधि बनी हुई है। यहाँ पर हर वर्ष तीन दिन का 'हरिदास स्मृति संगीत समारोह' होता है। इसमें दुनियाभर के शास्त्रीय संगीत के विद्वान और गायक भाग लेते हैं।

स्वामी हरिदास ने दुनिया को आठ शिष्य दिए, जो संगीत के क्षेत्र में विलक्षण विद्वान थे। इनमें बैजनाथ उर्फ बैजू बाबरा और तान्या मिश्रा उर्फ तानसेन को सभी संगीतप्रेमी जानते हैं। हरिदास किसी दरबार में नहीं गए और कहते हैं कि उनकी कुटिया में मुगल बादशाह अकबर उनका संगीत सुनने तानसेन के साथ आया था।

भारतीय अथवा हिंदुस्तानी शास्त्रीय संगीत को स्वामी हरिदास ने ध्रुपद से समृद्ध किया। उनकी गायन शैली और भक्ति रस की रचनाएँ देश के संगीतकारों और संगीतप्रेमियों को रस और राग से आनंदित करती आई हैं। स्वामी हरिदास का सर्वाधिक महत्वपूर्ण योगदान यह है कि उन्होंने अपनी काव्य-रचनाओं को संगीत की एक नई शैली प्रदान की। रासलीला जैसे नाटक का प्रारंभ किया। स्वामी हरिदास ने तत्कालीन संगीत-शैलियों से निर्लिप्त रहकर ध्रुपद लिखे और उन्हें संगीत की मौलिक पहचान दी। उन्होंने संगीत और साहित्य का अद्भुत सामंजस्य स्थापित किया।

उस युग में साधु-संत, कवि अपने बारे में कुछ नहीं लिखते थे, इसलिए स्वामी हरिदास की निश्चित जन्मतिथि का आज तक पता नहीं चला है। कहते हैं, उनका जन्म वृंदावन के पास राजपुर में सन् 1480 में हुआ था। उनकी माँ का नाम चित्रा देवी और पिता का नाम गंगाधर था। उन्होंने 24 या 25 साल की उम्र में ही निम्बार्क संप्रदाय में आकर संन्यास ले लिया और फिर जिंदगीभर विरक्त संन्यासी बनकर रहे। स्वामी हरिदास का गोलोकवास 1575 में हुआ।

कुछ विद्वानों का कहना है कि स्वामी हरिदास के पिता मुल्तान के रहने वाले थे और सारस्वत ब्राह्मण थे। गंगा देवी उनकी माँ थीं। उनका परिवार उत्तर प्रदेश में जनपद

शिवचरण चौहान

जन्म : 26 फरवरी, 1959

शिक्षा : एम.ए. हिंदी, अर्थशास्त्र, बी.एड.

प्रकाशन : बाल साहित्य की 11 पुस्तकें, ललित निबंध सहित 36 अन्य पुस्तकें प्रकाशित। करीब दो हजार से अधिक रचनाएँ प्रमुख पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित। दूरदर्शन लखनऊ, आकाशवाणी लखनऊ और दिल्ली से कविताएँ और कहानी, नाटक प्रसारित।

सम्मान : बाल साहित्य के लिए उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान; भारतीय बाल कल्याण संस्थान, कानपुर सहित करीब एक दर्जन संस्थाओं द्वारा पुरस्कृत व सम्मानित

संप्रति : एक प्रमुख मीडिया संस्थान में वरिष्ठ समाचार संपादक पद से सेवानिवृत्त। वर्तमान समय में स्वतंत्र पत्रकारिता और लेखन

संपर्क : 9369766563

ई-मेल : shivcharany2k@gmail.com

अलीगढ़ के पास खैखाली नामक गाँव में आकर बस गया था। हरिदास का जन्म उसी गाँव में सन् 1512 में हुआ और उनकी स्मृति में अब उस गाँव का नाम हरिदासपुर है। युवावस्था में उन्होंने संन्यास ग्रहण किया और सन् 1607 में देहत्याग किया। बाबू राधाकृष्णदास ने 'भक्तसिंधु' ग्रंथ का प्रमाण देकर यह माना है कि स्वामी जी सनाढ्य ब्राह्मण थे तथा हरिदासपुर के निवासी थे। नाभादास ने अपने 'भक्तमाल' में हरिदास को 'आसधीर उद्योतकर' कहा है।

"स्वामी हरिदास कृष्णभक्ति की एक शाखा, सखी संप्रदाय यानी हरिदासी संप्रदाय के स्थापक भी थे। संगीत की एकांतिक साधना और हरिभक्ति ही उनके जीवन का लक्ष्य था। संगीत के क्षेत्र में, उनके आठ शिष्य—बैजू बाबरा, गोपाल लाल, मदन लाल, रामदास, दिवाकर पंडित, सोमनाथ पंडित, तन्ना मिश्र (तानसेन) और राजा सौरसेन थे।"

स्वामी हरिदास का विवाह ग्यारह वर्ष की आयु में हरिमती नामक कन्या से कर दिया गया, लेकिन उन्हें किसी प्रकार की शारीरिक आसक्ति उत्पन्न नहीं हुई। उनका कहना था कि यदि प्रेम करना ही है तो कमलनयन भगवान कृष्ण से करना चाहिए, क्योंकि इस प्रेम के आगे शेष सारे प्रेम फीके हैं। किंवदंती है कि विवाह के चार वर्ष बाद, स्वामी जी की कृष्णभक्ति से प्रभावित होकर उनकी पत्नी ज्योतिपुंज बनकर स्वामी हरिदास के मन में समाधिस्थ हो गईं। जिस स्थान पर यह घटना घटी थी, वह स्थान हरिदासपुर में 'सती की समाधि' के नाम से आज भी मौजूद है।

बचपन से ही स्वामी हरिदास के घर का वातावरण भक्ति और संगीतमय था, जिसका असर उन पर पड़ना स्वाभाविक था। किशोरावस्था में ही हरिदास में वैराग्य की भावना जाग्रत हो गई और पच्चीस वर्ष के होते ही वे घर छोड़कर संन्यासी हो गए। इसके बाद वे वृंदावन चले गए, जहाँ उन्होंने यमुना के किनारे निधिवन को अपना घर और साधना-स्थल बना लिया। जीवनभर वे वहीं रहे। निम्बार्क संप्रदाय में दीक्षित होने के बाद जीवनभर वृंदावन में रहे। उनकी शिष्य परंपरा में विट्ठलदास, विप्रल, भगवत रसिक आदि अनेक महात्मा हुए हैं।

हरिदास जी उच्च कोटि के त्यागी, निस्पृह और महान हरिभक्त थे। त्यागी ऐसे कि कौपीन, मिट्टी का करवा और यमुना की रज और एक तानपूरा ही अपने साथ रखते थे। स्वामी हरिदास राधाकृष्ण के नित्य लीला-विहार के ध्यान और कीर्तन में आठों पहर रात-दिन मग्न रहते। उन दिनों उत्तर भारत में ज्यादातर ब्रजभाषा बोली जाती थी। वृंदावन में रहकर उन्होंने अनेक ध्रुपदों की रचना की तथा उन्हें शास्त्रोक्त रागों एवं तालों में निबद्ध किया। ध्रुपद के अतिरिक्त, विष्णु संबंधी और अन्य छंदमय पद लिखकर स्वामी जी कवि के रूप में भी सुप्रतिष्ठित हो गए। कवि, गायक होने के साथ-साथ स्वामी हरिदास नृत्य शास्त्र के भी श्रेष्ठ आचार्य थे। उन्होंने राधा कृष्ण के महारास की शुरुआत कर नृत्य में एक नयी विधा की नींव रखी।

स्वामी हरिदास के समय ही मथुरा-वृंदावन के मंदिरों में गायन-वादन-नृत्य के स्वर गूँजने लगे। संसार के सुख-ऐश्वर्य से विमुख होकर स्वामी हरिदास, संगीत स्वरों के अथाह सागर में डूबते गए। वे दिनोंदिन पूजनीय बनते गए और उनके द्वारा आत्म-विभोर होकर गाए जाने वाले पद और गीत अमर हो गए। उन्होंने साहित्य और संगीत, रस और स्वर, दोनों में अद्भुत रागात्मकता स्थापित कर अपने श्याम-श्यामा की उपासना की। नाद को ब्रह्म मानते थे। उन्हें 'संगीत शिरोमणि' और 'रसिक शिरोमणि' कहा जाता है। स्वामी हरिदास द्वारा रचित कुल 128 पद बताए जाते हैं, जिनमें 18 पद सिद्धांत-दर्शन संबंधी और शेष श्री कृष्ण के लीला-विहार से संबंधित हैं। सिद्धांत पद और लीला-विहार की पदावली को 'केलिमाला' कहते हैं। 'केलिमाला' के सरस पदों में श्याम-श्यामा के नित्य विहार का अनूठा चित्रण किया गया है। ये पद राग कान्हड़ा, केदार, कल्याण, विभास और सारंग में रचे गए हैं। सिद्धांत पदों में 'हित तो कील कमलनैन सों, जा हित के आगे और हित लागै फीको' और

मन लगाइ प्रीति कीजै कर करवा सौं, ब्रज-बीथिन दीजै सोहिनी।
वृन्दावन सौं, बन-उपवन सौं, गुंज-माल कर पोहिनी॥

बहुत प्रसिद्ध हैं। इन पदों में सर्वस्व त्याग, अकिंचनता और अनन्यता की झाँकी देखने को मिलती है। स्वामी हरिदास संगीतशास्त्र के विलक्षण ज्ञानी और विद्वान थे। उन्हें संगीत के भेद-अनुभेदों का संपूर्ण ज्ञान था। उनके पदों में स्थान-स्थान पर गायन-वादन से संबंधित परिभाषाओं का उल्लेख तथा तत्कालीन रागों का वर्णन मिलता है। इन पदों में जहाँ नृत्य संबंधी 'ता ता थ इ' आदि बोलों का उल्लेख मिलता है, वहीं ताण्डव और लास्य नृत्य का भी वर्णन है। इनके अलावा, उनकी कृतियों में किन्नरी, अधोती, मृदंग, डफ आदि वाद्यों का भी उल्लेख मिलता है।

स्वामी हरिदास कृष्णभक्ति की एक शाखा, सखी संप्रदाय यानी हरिदासी संप्रदाय के स्थापक भी थे। संगीत की एकांतिक साधना और हरिभक्ति ही उनके जीवन का लक्ष्य था। संगीत के क्षेत्र में, उनके आठ शिष्य—बैजू बाबरा, गोपाल लाल, मदन लाल, रामदास, दिवाकर पंडित, सोमनाथ पंडित, तन्ना मिश्र (तानसेन) और राजा सौरसेन थे। इनमें से सबसे ज्यादा प्रसिद्धि तानसेन और बैजू बावरा को मिली।

एक बार मुगल बादशाह अकबर ने तानसेन से पूछा था कि तुम्हारे गुरु हरिदास इतना अच्छा क्यों गाते हैं? तब तानसेन ने कहा, "मैं आपको खुश करने के लिए गाता हूँ और स्वामी जी भगवान कृष्ण को प्रसन्न करने के लिए गाते हैं।" स्वामी हरिदास भगवान श्री कृष्ण का दरबार छोड़कर किसी दरबार में नहीं गए और किसी से कोई याचना नहीं की। उन्होंने हमेशा दूसरों की भलाई ही की। जब तक संगीत जीवित है स्वामी हरिदास का नाम भी जीवित रहेगा।

संपूर्ण विकास के लिए जनसंख्या नियंत्रण जरूरी

नीति आयोग के मुख्य कार्यकारी अधिकारी बीवीआर सुब्रह्मण्यम द्वारा दिए इस संदेश, कि भारत इस साल के अंत तक जापान को पीछे छोड़ते हुए दुनिया की चौथी सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था बन जाएगी, के बाद पूरा देश एक सुखद एहसास से भर गया। श्री सुब्रह्मण्यम ने यह बात 10वीं नीति आयोग गवर्निंग काउंसिल की बैठक के बाद एक प्रेस कॉन्फ्रेंस के दौरान कही। उन्होंने आगे कहा कि अब अगले ढाई से तीन वर्षों में भारत, जर्मनी को पीछे छोड़कर तीसरा स्थान प्राप्त करने की ओर अग्रसर है। भारत विश्व की सबसे तेजी से बढ़ती प्रमुख अर्थव्यवस्था बना हुआ है और अगले दो वर्षों में छह प्रतिशत से अधिक की वृद्धि दर्ज करने वाला एकमात्र देश है।

एक तरफ यह खुशी और दूसरी तरफ यह तथ्य कि भारत चीन को पछाड़कर दुनिया में सबसे अधिक आबादी वाला देश बन चुका है। हर साल इसमें लगभग एक प्रतिशत की वार्षिक वृद्धि हो रही है। भारत की जनसंख्या में अनियंत्रित वृद्धि हो रही है, और ऐसा अनुमान है कि 2030 तक यह बढ़कर डेढ़ अरब और 2050 तक दो अरब के पार हो जाएगी। अनेक विद्वानों का यह निष्कर्ष है कि भारत के प्राकृतिक संसाधनों के हिसाब से यहाँ की आदर्श जनसंख्या 50-60 करोड़ तक ही होनी चाहिए।

अनियंत्रित बढ़ती हुई जनसंख्या आज दुनिया की सबसे बड़ी परेशानियों में से एक बन चुकी है। जनसंख्या वृद्धि के कारण संसाधनों का बँटवारा ठीक तरह से नहीं हो पाता है। वहीं बढ़ती जनसंख्या के अनुपात में उपलब्ध संसाधन अब कम पड़ने लगे हैं। जाहिर है कि यदि किसी भी देश की जनसंख्या लगातार तीव्र गति से बढ़ेगी तो उसी अनुपात में वहाँ उपलब्ध प्राकृतिक संसाधनों पर दबाव भी बढ़ेगा। इसे भारत के संदर्भ में देखा जाए तो 1 जनवरी, 2025 को भारत की जनसंख्या लगभग 146 करोड़ थी, जो विश्व की कुल जनसंख्या (लगभग 8.9 अरब) का करीब 18 प्रतिशत है। विश्व के भूभाग का मात्र ढाई प्रतिशत जमीन तथा चार फीसद जल भारत के पास है।

लगातार बढ़ती जनसंख्या की वजह से जो सबसे बड़ी चुनौती पैदा होती है वो है प्राकृतिक संसाधनों पर बढ़ता दबाव। इन प्राकृतिक संसाधनों में जमीन, जल, जंगल और खनिज शामिल है। जनसंख्या के बढ़ने की वजह से इन संसाधनों का जरूरत से ज्यादा इस्तेमाल होता है। नतीजतन, आधारभूत सुविधाओं के सारे प्रयास असफल होते जाते हैं। स्वास्थ्य, रेलवे, शिक्षा, कृषि उत्पादकता और पानी की कमी के साथ पर्यावरण में दुर्दशा जैसे अनेक उदाहरण हमारे सामने है।

संजय कुमार मिश्र

जन्म : 01 अगस्त, 1974

शिक्षा : एम.ए. (राजनीति शास्त्र), एम.ए. (जनसंचार)

प्रकाशन : 'सीधा रास्ता उधर है' (कहानी संग्रह), 'हर दिल में बसे बसंत' (लेखों का संग्रह) के अतिरिक्त, अनेक प्रतिष्ठित साहित्यिक पत्रिकाओं में कहानियाँ प्रकाशित। राष्ट्रीय समाचार पत्रों एवं पत्रिकाओं में सामाजिक-राजनैतिक चिंतनपरक लेख प्रकाशित।

संप्रति : संपादक, 'विशुद्ध स्वर'

संपर्क : मोबाइल– 9971189229

बढ़ती आबादी के कारण आवास, परिवहन, स्वास्थ्य और शिक्षण सुविधाओं से जुड़े बुनियादी ढाँचे का विस्तार करने की जरूरत दिनोंदिन बढ़ती जाती है। एक बहुत बड़ी आबादी की जरूरतों को पूरा करना एक मुश्किल काम बनता जा रहा है और आबादी का एक बड़ा हिस्सा बदहाल हालात में जीने के लिए मजबूर है। आर्थिक दृष्टिकोण से देखें, तो बढ़ती जनसंख्या के कारण कार्यबल में भी वृद्धि हो रही है, जिसके लिए रोजगार के पर्याप्त अवसरों के सृजन की आवश्यकता है। सेंटर फॉर मॉनिटरिंग इंडियन इकोनॉमी के अनुसार, भारत में बेरोजगारी का स्तर 6.1 प्रतिशत पर है। असंगठित क्षेत्रों की स्थिति और भी बदतर है।

जनसंख्या में वृद्धि के साथ गरीबी और आर्थिक असमानता जैसी समस्याओं से निपटना और मुश्किल हो जाएगा, जिसके लिए संसाधनों के न्यायपूर्ण बँटवारे और मूलभूत सुविधाओं तक पहुँच की आवश्यकता है। आबादी में वृद्धि के साथ आवास और परिवहन जैसी आधारभूत अवसंरचना पर दबाव बढ़ेगा और उसकी जरूरतों को पूरा करने के लिए बड़े निवेश की आवश्यकता होगी। जैसे-जैसे जनसंख्या बढ़ती जा रही है, सामाजिक-आर्थिक रूप से वंचित समुदायों की कठिनाइयाँ बढ़ती जा रही हैं। तीव्र शहरीकरण के कारण शहरों में भीड़भाड़ और अव्यवस्थित शहरी नियोजन जैसी स्थितियाँ पैदा हुई हैं, जिससे मलिन बस्तियाँ, व्यस्त यातायात और बुनियादी सुविधाओं तक पहुँच के अभाव जैसी समस्याएँ पैदा होती हैं। सरकारों को ऐसी नीतियों को लागू करने पर ध्यान देने की जरूरत है, जिससे समावेशी विकास, उद्यमिता और कौशल-विकास को बढ़ावा मिले और बेरोजगारी जैसी समस्याओं से निपटने और सतत आर्थिक विकास को सुनिश्चित करने में मदद मिले।

संसाधनों की सीमितता और बुनियादी ढाँचे की अपर्याप्तता को देखते हुए गुणवत्तापूर्ण शिक्षा और स्वास्थ्य सेवाएँ उपलब्ध कराना बहुत कठिन है। सामुदायिक संघर्ष को रोकने और सामाजिक उन्नति के लिए विभिन्न समूहों के बीच सामुदायिक एकजुटता और सद्भाव को बनाए रखने की जरूरत है। गरीबी और असमानता को दूर करने के लिए गुणवत्तापूर्ण शिक्षा, स्वास्थ्य सुविधाओं और बुनियादी सेवाओं तक पहुँच और संसाधनों की उपलब्धता को सुनिश्चित करने की जरूरत है। प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल, मातृ एवं शिशु स्वास्थ्य देखभाल और विशेष उपचारों के लिए बुनियादी ढाँचे के निर्माण सहित समूची स्वास्थ्य व्यवस्था को बेहतर बनाने की तत्काल आवश्यकता है।

पारिस्थितिक तंत्र के दृष्टिकोण से देखें, तो जनसंख्या वृद्धि प्राकृतिक संसाधनों पर भारी दबाव डालती है, जिससे संसाधनों के अंधाधुंध दोहन, वनों की कटाई, जल के अभाव और प्रदूषण जैसी समस्याएँ जन्म लेती हैं। ग्लोबल कार्बन बजट रिपोर्ट 2022 के अनुसार, भारत के कोयला, तेल और गैस उत्सर्जन के छह प्रतिशत की दर से बढ़ने का अनुमान है। इन चुनौतियों का सामना करने और दीर्घकालिक विकास के लिए प्राकृतिक संसाधनों और संरक्षण परंपराओं का उचित प्रबंधन करना होगा। जनसंख्या वृद्धि से ग्रीनहाउस गैसों का उत्सर्जन बढ़ता है और जलवायु परिवर्तन में तेजी आती है। भारत को जलवायु परिवर्तन के नकारात्मक प्रभावों को दूर करने के लिए हरित नीतियों को लागू करने, नवीकरणीय ऊर्जा स्रोतों को बढ़ावा देने और दृढ़ एवं सतत प्रयासों को अपनाने की आवश्यकता है। हरित भविष्य के लिए पर्यावरण के लिहाज से अनुकूल जीवनशैली को बढ़ावा देने और पर्यावरण संरक्षण के महत्व के बारे में जागरूकता बढ़ाने जैसे महत्वपूर्ण कदम उठाने होंगे।

भारत की बढ़ती जनसंख्या मानव-विकास पर बहुआयामी प्रभाव डालती है, जो अर्थव्यवस्था, समाज और पर्यावरण जैसे विभिन्न क्षेत्रों को प्रभावित कर रही है। तेजी से बढ़ती जनसंख्या के कारण पैदा होने वाली चुनौतियों और उपलब्ध अवसरों का लाभ उठाने के लिए समावेशी नीतियों को लागू करने, समतामूलक विकास को बढ़ावा देने, लचीले बुनियादी ढाँचे का निर्माण, शिक्षा एवं स्वास्थ्य प्रणाली को बेहतर बनाने और दृढ़ एवं सतत प्रयासों को अपनाने की आवश्यकता है। जबकि जनसंख्या वृद्धि के कारण बहुत सारी चुनौतियाँ पैदा होती हैं। इन चुनौतियों का प्रभावी ढंग से सामना करने के लिए, सरकारों को नागरिक समूहों और अंतरराष्ट्रीय साझेदारों के साथ मिलकर ऐसी व्यापक और टिकाऊ नीतियाँ तैयार करनी होंगी, जो मानव-विकास के लिए समतापूर्ण विकास, मजबूत सामाजिक ढाँचे और पर्यावरणीय सुरक्षा को बढ़ावा दें। भारत केवल एक समग्र और एकीकृत दृष्टिकोण को अपनाकर ही जनसांख्यकीय बदलाव का लाभ उठा सकता है और अपनी बढ़ती आबादी के लिए न्यायसंगत और सतत विकास हासिल कर सकता है।

भारत के लिए बढ़ती आबादी एवं सिकुड़ते संसाधन एक त्रासदी है, एक विडंबना है। क्योंकि जनसंख्या के अनुपात में संसाधनों की वृद्धि सीमित है। जनसंख्या वृद्धि ने कई चुनौतियों को जन्म दिया है।

जनसंख्या वृद्धि के कारण भारत की स्थिति खराब है। इसके कारण उत्पन्न होने वाली पर्यावरण के प्रदूषण के अलावा, बेरोजगारी, गरीबी और भुखमरी आदि ऐसी समस्याएँ हैं, जो किसी भी समाज के नैतिक, सैद्धांतिक, सांस्कृतिक और नैतिक ताने-बाने को ध्वस्त कर देती हैं। इसके कारण व्यक्तियों का सामाजिक विकास, सांस्कृतिक उत्थान और मानसिक एवं आध्यात्मिक उन्नयन बाधित होता है। इसके नतीजे के रूप में समाज में चारों ओर हिंसा, बलात्कार, भ्रष्टाचार, लूटपाट, चोरी, हत्या, आत्महत्या, उग्रवाद और आतंकवाद जैसे अपराधों में बेतहाशा वृद्धि होती है। देखा जाए तो कमोबेश आज ऐसी ही परिस्थितियों से हमारा देश जूझ रहा है।

देश की जनसंख्या में हो रही तेज वृद्धि संसाधनों और सेवाओं पर दबाव डाल रही है, जिससे पर्यावरण का क्षरण हो रहा है और गरीबी तथा असमानता बढ़ रही है। स्वास्थ्य व्यवस्था पर बोझ बढ़ जाता है, जिससे गुणवत्तापूर्ण स्वास्थ्य देखभाल तक पहुँच एक चुनौती बन जाती है। शिक्षा का बुनियादी ढाँचा बढ़ती आबादी की जरूरतों से दबा जा रहा है। प्राकृतिक संसाधनों पर बढ़ती आबादी के बोझ ने पर्यावरणीय दुष्प्रभावों को बढ़ा दिया है।

आबादी के बढ़ते बोझ के बावजूद, कुछ राज्यों या समुदायों की जनसंख्या बढ़ाने की आवाज समय-समय पर पर उठती रहती हैं। यह ठीक है कि दक्षिण के राज्यों ने जनसंख्या नियंत्रण और विकास के पैमाने पर अच्छा काम किया है। उनकी नीतियों को अपनाकर उत्तर भारत के राज्यों को भी जनसंख्या नियंत्रण की कारगर उपाय करने चाहिए। दक्षिण राज्यों के नीति नियंताओं को भी उत्तर भारत के राज्यों को प्रोत्साहित करना चाहिए। यह सही है कि दक्षिण के राज्य सरकारों ने अनेक नीतियाँ बनाकर उत्तर भारतीय राज्यों की तुलना में वहाँ की जनसंख्या को नियंत्रित किया है, किंतु यह स्थिति नहीं आई है कि जनसंख्या बढ़ाने की बात की जाए। उनको एक डर सता रहा है कि कम जनसंख्या होने के कारण 2026 के बाद होने वाले परिसीमन के बाद संसद में उनका प्रतिनिधित्व कम हो सकता है। इसके लिए केंद्र सरकार को उनकी चिंता को दूर करते हुए ऐसी नीति बनानी चाहिए कि जनसंख्या नियंत्रण की उनकी नीतियों का उन्हें दंड न मिले, बल्कि उनकी अच्छी नीतियों का अन्य राज्य भी अनुसरण करे।

इसमें कोई शक नहीं है कि सरकार देश की बुनियादी आवश्यकताओं एवं जटिल समस्याओं के समाधान के लिए अनथक प्रयास कर रही है। चाहे वह स्वच्छता, स्वास्थ्य, पेयजल, आवास, शिक्षा, पर्यावरण, कृषि सुधार, महिला कल्याण एवं सुरक्षा आदि हो। परंतु हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि समाधान के सारे उपाय बढ़ती जनसंख्या के बोझ तले दबकर कुछ वर्षों में ही चरमरा जाते हैं।

भारत का चौथी सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था बनना एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है, जो वैश्विक मंच पर उसकी बढ़ती ताकत को दर्शाता है। किंतु अंदर झाँककर देखें तो कुछ और ही बदरंग तस्वीर उभरती है। देश की जीडीपी के मामले में हम भले ही जापान को पीछे छोड़ने के कगार पर हैं, लेकिन प्रति व्यक्ति आय, जीवन-प्रत्याशा, सामाजिक सुरक्षा, रोजगार, उत्पादन और तकनीक जैसे क्षेत्रों में जापान भारत से बहुत आगे है। 2025 में भारत की प्रति व्यक्ति आय 2,800-2,937 डॉलर है, जो जापान के प्रति व्यक्ति आय (33, 138-53, 059 डॉलर) की तुलना में 12 गुना कम है। भारत की विशाल आबादी के कारण प्रति व्यक्ति जीडीपी काफी कम हो जाती है। भारत में जीवन-प्रत्याशा 2021 में लगभग 69-70 वर्ष थी, जो वैश्विक औसत से कम है। भारत में स्वास्थ्य सेवाओं पर पर खर्च जीडीपी का मात्र 1.2 प्रतिशत है। जबकि जापान दुनिया के उन देशों में शामिल है, जहाँ जीवन-प्रत्याशा दुनिया में सबसे अधिक है। यहाँ लोगों की औसत उम्र 84-85 वर्ष है। जापान में स्वास्थ्य क्षेत्र पर अधिक पैसा खर्च किया जाता है। यहाँ लोगों को पौष्टिक भोजन मिलता है और यहाँ की सामाजिक सुरक्षा प्रणाली मजबूत है।

देश में बढ़ती जनसंख्या के बोझ तले महानगरों की तो बात छोड़िए, अब छोटे-छोटे शहर और कस्बे तक दमघोंटू प्रदूषण के दायरे में आ गए हैं। हमारी ज्यादातर नदियों का दम घुट रहा है। पहाड़ नग्न और वीराने हो रहे हैं। भूजल का स्तर पाताल में पहुँच गया है। खेती की जमीन अपनी उर्वरा शक्ति खोती जा रही है। पूरा पारिस्थितिकी तंत्र बिगड़ रहा है। हम तेजी से अनेक बीमारियों की चपेट में आते जा रहे हैं। समय की आवश्यकता है कि केंद्र, सभी राज्य सरकारें तथा पूरा समाज विचारों की धुँध से बाहर निकलकर सुचिंतित जनसंख्या नियंत्रण की नीति बनाकर एक अभियान चलाएँ, ताकि देश के हरेक नागरिक को मूलभूत स्वच्छ हवा, पानी, आवास और काम करने के लिए उचित वातावरण मिले। विश्व की चौथी बड़ी अर्थव्यवस्था बनना भारत की प्रगति की दिशा में एक बहुत बड़ी और ऊँची छलाँग है। अब हमें देश की जनसंख्या की तीव्र गति को मद्धिम कर लोगों के जीवन में गुणवत्तापूर्ण, संपूर्ण बदलाव लाना जरूरी है, ताकि प्रगति के सभी मानदंडों पर हम विकसित देशों की बराबरी कर सकें।

असम की सांस्कृतिक धरोहर मोइदाम

भारत का उत्तर-पूर्व इलाका। उत्तर-पूर्व का नाम लेते ही असम अनायास ही आँखों के सामने आ जाता है। दूर-दूर तक फैले वो चाय के बागान जहाँ आँखों को तृप्त करते हैं, वहीं ब्रह्मपुत्र की कलकल करती ध्वनियाँ कानों को मधुरता प्रदान करती हैं। इतना ही नहीं, वास्तुकला और स्थापत्य कला की दृष्टि से तो असम शुरू से ही बहुत समृद्ध रहा है, जिसका एक छोटा-सा उदाहरण हम मोइदाम को ही देख लें।

लंबे वर्षों तक अपना आधिपत्य रखने वाली ताई-अहोम साम्राज्य दक्षिणी चीन या बर्मा से आई एक ऐसी जनजाति थी, जो पूरे प्रदेश पर अपना गहरा छाप छोड़ गई। इनके अप्रतिम साहस के कारण ही असम सदा मुगल आक्रमणों से बचा रहा। सचमुच, इन आदिवासियों के कार्यों की हम जितनी प्रशंसा करें उतनी कम है। इन आदिवासियों ने ही अपनी जनजाति के नाम पर इस प्रदेश का नाम 'असोम' रखा, जो बाद में असम के नाम से विख्यात हुआ।

वर्ष 1228 में आई इस ताई-अहोम साम्राज्य की स्थापना का श्रेय चाओलुंग सिउ-का-फा को दिया जाता है। उनके असाधारण व्यक्तित्व के लिए ही उन्हें चाओलुंग की उपाधि दी गई है। उन्होंने चावल की खेती और उस क्षेत्र में बुनियादी ढाँचे को भरपूर बढ़ावा दिया। ये आदिवासी मुख्य रूप से असम के चराइदेव जिले के एक बड़े हिस्से में निवास करते थे। इसके अलावा, आस-पास के कुछ इलाकों में भी उनका अपना पूरा आधिपत्य रहा। चे-राय-दोई नाम का अर्थ ही है–'पहाड़ियों का चमकता शहर'।

चराइदेव असम के शिवसागर शहर से मात्र 30 कि.मी. दूरी पर स्थित है। हवाई यात्रा की दृष्टि से देखा जाए तो सौ कि.मी. की दूरी पर स्थित जोरहाट इसका सबसे नजदीकी हवाई अड्डा है, वहीं रेल के लिए 105 कि.मी. की दूरी तय करनी पड़ती है।

करीब 600 वर्षों तक रहने वाले इन आदिवासियों की मृत्यु के बाद दफन की जाने वाली प्रथा का एक विशाल संग्रह 'मोइदाम' के नाम से प्रसिद्ध है, जो सत्तारूढ़ ताई-अहोम राजघराने के सदस्यों के दफन टीले के रूप में जाना जाता है।

दरअसल, मोइदाम अर्ध-गोलाकार मिट्टी के टीले हैं, जो मृतक के शरीर के आकार के आधार पर भिन्न होते हैं। ये संरचनाएँ अहोम साम्राज्य की कलात्मक और इंजीनियरिंग क्षमताओं को भी दर्शाती हैं। मोइदाम अहोम की समृद्ध सभ्यतागत विरासत, स्थापत्य कला, वास्तुकला और गहरी आध्यात्मिक मान्यताओं का सुंदर प्रतीक है।

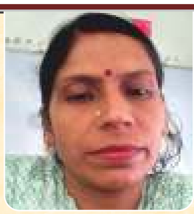

डोली शाह

जन्म : 02 नवंबर, 1982

शिक्षा : स्नातक, मनोहरी देवी कॉलेज (डिब्रूगढ़)

प्रकाशन : 'जिंदगी', 'प्रेरणा भारती' शीर्षक कविताएँ प्रकाशित। इसके अतिरिक्त, 'छपते-छपते' (पश्चिम बंगाल), 'लोकसदन' (छत्तीसगढ़), 'इबादत' (राजस्थान), 'जनमोर्चा' (सिलीगुड़ी) समाचार पत्रों में अनेक रचनाएँ प्रकाशित।

संप्रति : कस्तूरबा गांधी बालिका विद्यालय, असम में शिक्षिका के रूप में कार्यरत

संपर्क : मोबाइल– 9395726158

ईमेल– shahdolly777@gmail.com

इतना ही नहीं, अहोम की अपने शाही पूर्वजों के प्रति श्रद्धा को भी मोइदाम भरपूर रूप में दर्शाता है। ये लोग मृतकों की आत्माओं से आशीर्वाद लेने के लिए इन स्थानों पर 'मी-डैम-मी-फी' और तर्पण के ताई-अहोम अनुष्ठान का सहारा लेते थे।

> **मोइदाम ताई-अहोम शब्द 'फ्रांगमाई-डैम' से लिया गया है। 'फ्रांगमाई' का अर्थ है—'कब्र में डालना' और 'डैम' का अर्थ है—'मृत व्यक्ति की आत्मा'। इस शाब्दिक अर्थ से ही पूरी प्रक्रिया हमारे सामने आ जाती है। शुरू में यह लकड़ियों द्वारा ही बनाई जाती थी, परंतु 17वीं शताब्दी से ही मुख्य रूप से यह ईंट, पत्थरों और मिट्टी से बनाई जाने लगी।**

मोइदाम ताई-अहोम शब्द 'फ्रांगमाई-डैम' से लिया गया है। 'फ्रांगमाई' का अर्थ है—'कब्र में डालना' और 'डैम' का अर्थ है—'मृत व्यक्ति की आत्मा'। इस शाब्दिक अर्थ से ही पूरी प्रक्रिया हमारे सामने आ जाती है। शुरू में यह लकड़ियों द्वारा ही बनाई जाती थी, परंतु 17वीं शताब्दी से ही मुख्य रूप से यह ईंट, पत्थरों और मिट्टी से बनाई जाने लगी। इनका निर्माण पैमाने और जटिलता से भिन्न होता है। यह जमीन से काफी ऊपर उठी होती है। संरचनात्मक रूप में मोइदाम एक या एक से अधिक कक्ष होते हैं, जिसमें मेहराब होते हैं। प्रत्येक गुंबदनुमा कक्ष में एक केंद्रीय ऊँचा मंच होता है, जहाँ शव रखा जाता है और ऊपर एक खुला मंडप होता है, जिसे चाउ-चाली कहते हैं। इसमें एक अष्टकोणीय छोटी दीवार से पूरे मोइदाम को घेरा जाता है। इनमें कुछ सामान्य टीले होते हैं, तो कुछ में डिजाइनों वाली विस्तृत संरचनाएँ भी पाई जाती हैं। यहाँ एक खोखला गुंबद होता है, जिनमें भोजन, घोड़े, हाथी अन्य पशुओं के साथ, कभी-कभी रानियों और नौकरों के अवशेष भी शामिल होते हैं। ये वस्तुएँ मृतक की उच्च स्थिति को अभिव्यक्त करती हैं।

ताई-अहोम राजघराने को दफनाने का उत्तरदायित्व लिखुराखान और घ्राफालिया नामक विशेष लोग सँभालते थे और मुख्य रूप से चांग-रूंग-फुकुन नामक एक अधिकारी उसके निर्माण की देखरेख करता था।

इसमें लोगों के पार्थिव शरीर के साथ उनके सज्जा-सामान की सभी वस्तुएँ भी दफनाई जाती थी। शाही मोइदाम विशेष रूप से चराइदेव में पाई जाती थी, जबकि अन्य मोइदाम असम के जोरहाट और डिब्रूगढ़ के शहरों में स्थित है। यह इस समुदाय के लिए एक विशेष पवित्र स्थल है। मोइदाम को 'असम के पिरामिड' की संज्ञा भी दी जाती है। वहीं, इसे प्राचीन मिस्र के पिरामिड का सम्मान भी दिया जाता है। इनकी भव्यता और औपचारिक महत्व का यह एक अनूठा उदाहरण पेश करता है। इसमें लगभग 31 राजाओं के मोइदाम और 160 रानियों के मोइदाम हैं। अब तक 386 मोइदाम में से चराइदेव गाँव में 90 शाही मोइदाम खोजे गए और यह अच्छी अवस्था में संरक्षित भी हैं।

यह असम में पहला सांस्कृतिक स्थल और उत्तर-पूर्व में तीसरा स्थल है, जिसे विश्व विरासत सूची में शामिल किया गया है। यह दुनियाभर में वास्तुकला एवं परिदृश्य विरासत के संरक्षण तथा संवर्धन के लिए समर्पित एक ऐतिहासिक खिड़की है। लेकिन यह भी सच है कि 18वीं शताब्दी में ताई-अहोम शासकों के धर्म परिवर्तन (मुख्यतः हिंदू और बौद्ध धर्म) के अपनाने के बाद दफनाने की प्रथा लगभग बंद-सी हो गई और मृतकों का दाह संस्कार करना प्रारंभ हो गया, वहीं अब केवल राख को चराइदेव के मोइदाम में दफनाना प्रारंभ कर दिया गया है। लेकिन यह समुदाय आज भी इन मोइदामों की खुदाई को अपनी परंपराओं का अपमान मानते हैं। वह आज भी उनकी पूजा करते हैं। यहाँ तक कि इन आदिवासियों ने उस युग में भी प्रकृति संतुलन का भी खास ख्याल रखा है। उन्होंने ताई-अहोम के प्रति विश्वास और आध्यात्मिक आस्था दिखाते हुए मुख्यतः यहाँ बरगद, तामूलों के पेड़ और पांडुलिपियों के लिए इस्तेमाल किए जाने वाले वृक्षों को बहुतायत में लगाया। लेकिन दुर्भाग्यवश, करीब 600 वर्षों से चला आ रहा यह साम्राज्य लगभग 1800 के दशक में बर्मी आक्रमण से बिखर गया और फिर पूरा साम्राज्य ध्वस्त होने की कगार पर आ गया। प्रथम आंग्ल-बर्मी युद्ध (1824-1826) में अंग्रेजों ने बर्मियों को खदेड़कर अपना आधिपत्य जमा लिया, लेकिन भारत ने भी अपने धरोहर को सुंदर एवं सम्मानपूर्वक सँजोकर रखने का हर संभव प्रयास किया। इसी का परिणाम है कि आज इस योगदान को UNESCO की अंतरराष्ट्रीय सलाहकार संस्था, अंतरराष्ट्रीय स्मारक एवं स्थल परिषद, International Council on Moments and Sites (ICOMOS) द्वारा विश्व धरोहर सूची के लिए शामिल किया गया है, वहीं भविष्य की पीढ़ियों के लिए इस ऐतिहासिक स्थलों की जानकारी को सर्वसुलभ करने का सराहनीय प्रयास किया गया है।

समय के साथ प्राकृतिक आपदाओं ने उसकी ऊँचाई को कुछ कम जरूर किया है, लेकिन इस साम्राज्य की वास्तुकला की चमक को कम नहीं कर पाया है। यह पूरे असम के समृद्ध विरासत को आज भी गौरवान्वित करती है। यहाँ तक कि माननीय केंद्रीय संस्कृति और पर्यटन मंत्री श्री गजेंद्र सिंह शेखावत ने मोइदाम की तुलना मिस्र के पिरामिड से करके उसकी महत्ता को और विस्तृत किया है।

इस टीला-दफन प्रणाली को पहली बार जहाँ 2014 में यूनेस्को ने विश्व धरोहर स्थल की अस्थायी सूची में शामिल किया, वहीं 26 जुलाई, 2024 को नई दिल्ली में होने वाले विश्व धरोहर स्थल के 43वें सांस्कृतिक एवं मिश्रित संपत्तियों की भव्यता का सम्मान देकर इसकी महत्ता को बढ़ाने का प्रयास किया है। साथ ही, एक प्राचीन परंपरा की अनूठी झलक वाले इस ऐतिहासिक स्थल की जानकारी को प्रसारित करने का एक प्रशंसनीय प्रयास किया है।

आओ, भारतीय भाषाएँ सीखें

हिंदी	संस्कृत	पंजाबी	उर्दू	कश्मीरी	सिंधी	मराठी	कोंकणी	गुजराती	नेपाली	बांग्ला
निर्वाचन	**निर्वाचनम्**	**चोण**	**इंतिखाब**	**वोटिंग, चुनाव**	**चूंड, इंतिखाब**	**निवडणुक, मतदान**	**वेंचणूक**	**चूंटणी**	**निर्वाचन**	**निर्बाचक भोट**
निर्वाचन आयोग	निर्वाचनायोगः	चोण कमिशन	इलेक्शन कमीशन	चुनाव कॅमिशन	चुनाव कमीशन, चुनाव आयोग	निर्वाचन आयोग	वेंचणूक आयोग	चूंटणी पंच	निर्वाचन आयोग	निर्बाचन, आयोग, इलेक्सन कमिशन
निर्वाचन क्षेत्र	निर्वाचनक्षेत्रम्	चोण-खेतर	इलका-ए-इंतिखाब	इंतिखाबुक हलक	तकु, चुनाव क्षेत्र	मतदान क्षेत्र	वेंचणूक क्षेत्र	चूंटणी क्षेत्र	निर्वाचन क्षेत्र	निर्बाचन खेत्र
प्रतिनिधित्व	प्रातिनिध्यम्, प्रतिनिधित्वम्	प्रतिनिधता	नुमाइंदगी	नुमायंदगी	एविजीपणो, नुमाइंदगी, प्रतिनिधता	प्रतिनिधित्व	प्रतिनिधीत्व	प्रतिनिधित्व	प्रतिनिधित्व	प्रतिनिधित्
प्रश्न-अवधि	प्रश्नकालः	प्रशनकाल	वक्फा-ए-सवालात	सवालक वखत	सवाल लाइ वक्तु, प्रश्न-काल	प्रश्नोत्तराची वेळ	प्रस्नावळ-वेळ	प्रश्न समय	प्रश्नकाल	प्रश्न-अबधि, प्रश्नोत्तर काल
बहुमत	बहुमतम्	बहुमत्त	कस्रते राय	कसरति राय	घणाई, बहुमत	बहुमत	भौमत	बहुमति	बहुमत	बहुमत
मत	मतम्	मत्त	राय (वोट)	राय	वोट, मतु	मत	मत	मत	मत	मत, राय, भोट
मतदाता	मतदाता	मत्तदाता	राय दहिंदा (वोटर)	वोटर	वोटरु, मतदाता	मतदार, मतदाता	मतदाता	मतदार (मतदाता) मतदान	मतदाता	भोटदाता
मतदान	मतदानम्	मत्तदान	रायदही (वोटिंग)	वोट दयुन	मतदानु	मतदान	मतदान	मतदान	मतदान	भोटदान
मतपत्र	मत्तपत्रम्	मत्तपत्तर	बैलेट-पेपर (रायनामा)	वोट	वोट जो कागजु, मतपत्रु	मतपत्रिका	मतपत्र	मतपत्र	मतपत्र	भोटपत्र
मतपेटी	मतपेटी	मत्तपेटी	बेलेट-बाक्स	वोट सॉदूख	वोटनि जी पेती, मतपेती	मतपेटी	मतपेटी	मतपेटी	मतपेटिका/ मतपेटी	भोट बाक्स
मताधिकार	मताधिकारः	मत्त-अधिकार	हक्के-रायदही	वोटुक हख	वोट जो हकु, मत-अधिकारु	मताधिकार	मताधिकार	मताधिकार	मताधिकार	मताधिकार, भोटाधिकार

असमिया	मणिपुरी	ओड़िआ	तेलुगू	तमिल	मलयालम	कन्नड़	डोगरी	संताली	मैथिली	बोडो
निर्बाचनी	**मीखल, मी खन्ना, इलेक्शन**	**निर्बाचन**	**ऐन्निक**	**तेर्दल्**	**तिरञ्ञेटुप्पुॅ**	**चुनावणे मतदान**	**चुनाव**	**भोट, निर्बाचन**	**निर्वाचन**	**बिसायख'थि**
निर्बाचनी-आयोग	इलेक्शन कमीशन, मीखनगी कमीशन	निर्बाचन आयोग	ऐन्निकल-संघमु	तेर्दल् आणैक्कुळु	तिरञ्ञेटुप्पु कमिषन्	निर्वाचन आयोग चुनावणा आयेग	अलैक्शन-कमीशन	निर्बाचन आयोग	निर्वाचन आयोग	बिसायख' आयग
निर्बाचन-क्षेत्र	मीखननी मफम, कन्स्टिचुअन्सी	निर्बाचन क्षेत्र (खेत्र)	नियोजक वर्गमु	तेर्दल् तोगुदि	तिरञ्ञेटुप्पु मण्डलम्	मतदान क्षेत्र	चुनाऽखेत्तर	निर्बाचन क्षेत्र	निर्वाचन क्षेत्र	बिसायख' आवथा
प्रतिनिधित्व	मीहुत ओइबा नत्रगा हाप्पा	प्रतिनिधित्व	प्रतिनिधित्वमु	पिरदिनि-दित्त्वम्	प्रातिनिध्यम्	प्रतिनिधित्व	नुमैंदा	प्रतिनिधित्व	प्रतिनिधित्व	थान्दैथि
प्रश्नोत्तर-काल	वाहङ्गी मतम	प्रश्न-काल	प्रश्नल-समयमु	कैळिव नेरम्	चोद्यसमयम्	प्रश्नेय अवधि प्रश्ना-समय	प्रश्न-काल	कुक्लि घाड़िक्	प्रश्न-अवधि	सोंथि सम, सोंनाय-फिननाय सम
बहुमत	मत मशीङ् याम्बा	बहुमत, संख्या गरिष्ठता	बहुजनाभि प्रायमु	पेरुंपान्मै	भूरिपक्षम्	बहुमत	बहुमत	बहुमत	बहुमत	सानखेबां मत, बुंथाइ बां, सानगोबां बुंथाइ
मत, भोट	मत	मत, भोट	अभिप्रायमु, वोटु	वाक्कु	सम्मति, वोट्टुॅ	मत, ओटु	मत, बोट, राऽ	मत, राय, भेट	मत	बुंथाइ, मत, भ'ट
मतदाता, भोटर	मत पीबा मी भोटर	मतदाता, भोटर	वोटरु	वाक्काळर्	सम्मतिदायकन्,	मतदार	मतदाता, बोटर	मतदाता, भोटार	मतदाता	भ'ट होग्रा, बुंथाइ होग्रा
मतदान, भोटदान	भोटिंग, वोटिंग, भोट पीबा	मतदान,	वोटिंगु	वाक्कळिप्पु	मतदानम्, वोट्टेटुप्पुॅ	मतदान	मतदान, बोट देना	भोटएम	मतदान	भट होनाय, बुंथाइ होनाय
भोट-पत्र, बेलट-पेपार	भोत की चे बेलेट पेपर	मतदान पत्र, भोट कागज	ब्यालटु	वाक्कुच्चीट्टु	बालटटु पेप्पर्	मतपत्र	मतपत्तर, बोट	मतपत्र भोटसाकाम	मतपत्र	भ'टलाइ, बेल'ट पेपार, बुंथाइ लाइ
भोटर-बाकच, मतदान गुप्तभोटर-बाक्स	भोत की उपु, बेलेत बोकस	भोट बाक्स, मतदान बाक्स	ब्यालटु पेट्टे	ओट्टुप्पेट्टि	वोट्टु पेट्टि	मत-पेटटिगे	बैलट बक्स मत पेटी	भोट बाकसा	मतपेटी	बुंथाइ बागसु, भट बागसु बेलट बागसु
मताधिकार भोटाधिकार	भोत यादबगी अधिकार	मतदान अधिकार, भेट अधिकार	वोटिंग-हक्कु	वाक्कुरिमै	वोट्टवकाशम्	मताधिकार	बोटैं दा हक्क	भोट-आइदार	मताधिकार	बुंथाइ होनाय मोनथाइ, भ'ट मोनथाइ

(केंद्रीय हिंदी निदेशालय द्वारा प्रकाशित भारतीय भाषा कोश से साभार)

सिंधी साहित्य में राष्ट्रीय चेतना

सहस्राब्दियों से सिंध प्रदेश भारत का सीमा प्रहरी रहा है। सिकंदर हो या मुहम्मद बिन-कासिम, हर एक विदेशी आततायी को सबसे पहले सिंधी वीरों की तलवार की धार देखनी पड़ी। कौरव-पांडव युद्ध में कौरवों के पक्ष में महत्वपूर्ण भमिका निभाने वाले सिंध के राजा जयद्रथ की वीरता और रणकौशल का विशिष्ट स्थान है। महाभारत के उद्योग पर्व में कुंती जब श्रीकृष्ण के माध्यम से पांडवों के पास अपना संदेश भेजती हैं तो सिंध की रानी विदुला का उदाहरण देती हैं। रणभूमि से पीठ दिखाकर आने वाले अपने पुत्र संजय को देश की रक्षा के लिए युद्धभूमि में जाकर प्राणोत्सर्ग करने के लिए ललकारने वाली विदुला को कुंती ने अपना आदर्श माना।

भगवान अटलानी

जन्म : 10 मार्च, 1945, लाड़काणा (सिंध)

प्रकाशन : हिंदी में 13, सिंधी में 10 एवं स्वयं अथवा अन्य द्वारा अनूदित 11, कुल 34 पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं।

पुरस्कार : राजस्थान हिंदी साहित्य अकादमी के सर्वोच्च सम्मान 'मीरा पुरस्कार', राजस्थान सिंधी अकादमी के सर्वोच्च सम्मान 'सामी पुरस्कार' सहित 35 से अधिक सम्मान प्राप्त हैं।

संपर्क : मोबाइल— 9828400325

ई-मेल— bhagwanatlani@rediffimail.com

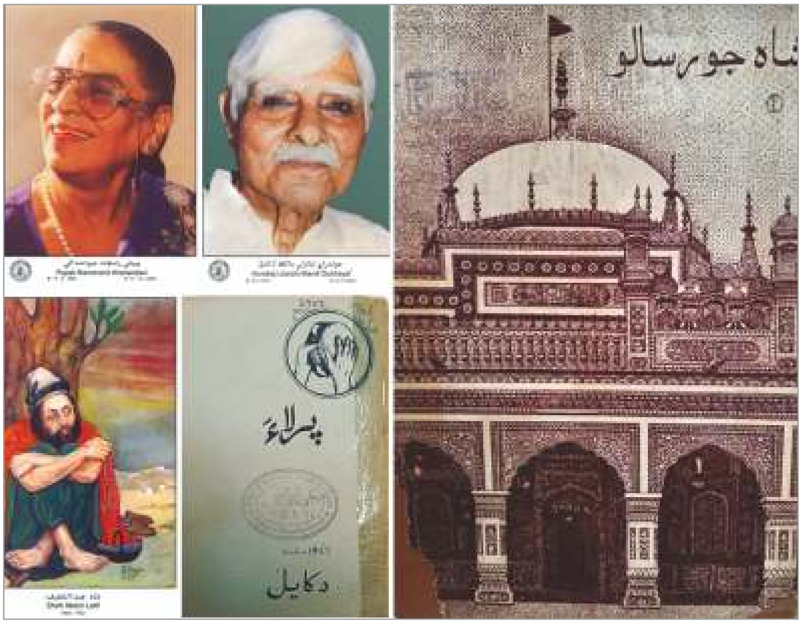

सिंध में राष्ट्रीय चेतना की धू-धू जलती अग्नि के पीछे शेक्सपियर और कालिदास की श्रेणी में माने जाने वाले सिंध के कवि शाह अब्दुल लतीफ (1689-1752), सांई सचल सरमस्त (1739-1829) और किशनचंद बेवस (1885-1947) का देश-प्रेम का संदेश देने वाला काव्य था। एक छोर पर शाह अब्दुल लतीफ ने 'उमर मारवी' काव्याख्यान की नायिका मारवी से कहलवाया,

सज़ुण ऐं साणीहु, कंहिं अणासीअ विसिरे,
हैफु तिन्हीं खे होइ, वतनु जिनि विसारियो

(अर्थात स्वजन और आत्मीयजन को कोई मूर्ख ही भुला सकता है। लानत है उनको, जो देश को भूल गए हैं।)

दूसरे छोर पर किशनचंद बेवस ने लिखा,

उहे माउरि भली मुरिकनि, जे ॿारोतन में लोली दियनि, त सदिके देश तां तनु-मनु करिण जहिड़ी न ॿी खिज़मत

(अर्थात माताएँ मुस्कराते हुए पालनों में लेटे बच्चों को लोरी सुनाती हैं कि देश के ऊपर तन-मन बलिदान करने से बड़ी कोई सेवा नहीं होती।)

नौजवानों में जोश फूँकते हुए लिखा,

अचो नवजवानो हुनर आजमायूं,
छुटियूं गरम गोलियूं जिगर आजमायूं,
परे खां पवनि था फिरंगियुनि जा तिजला,
करे सख्त सीना सुपर आजमायूं,
हली जेलखाने में लोहे जूं शीखूं,
ऐं ऊँचा भितियुनि जा पथर आजमायूं

राष्ट्रीय चेतना जाग्रत करने की दिशा में दुखायल का योगदान अविस्मरणीय है। दुखायल ने राष्ट्रभक्ति के पाँच हजार से अधिक गीत लिखे। इतनी संख्या में कौमी

गीत किसी भी भारतीय भाषा में किसी एक कवि ने नहीं लिखे हैं। यही कारण है कि उन्हें भारत सरकार ने पद्मश्री से नवाजा।

देश के लिए शीष देने वाली भावना को किसी पर अहसान नहीं, वरन् कर्तव्य बताते हुए अर्जुन सिकायल ने लिखा,

वतन लाइ सिरु जे डि॒नोसीं त छा थियो?
फिदा तंहिं तां तनु-मनु कयोसीं त छा थियो?

राष्ट्रीय चेतना जगाने के लिए काव्य-रचना करने वालों में अनेक सिंधी मुसलमान भी थे। इनमें अब्दुल करीम गिदाई, मिर्जा कलीच बेग, आगा सूफी, हाफिज़ मोहम्मद, शेख अयाज आदि प्रमुख हैं। अब्दुल करीम गदाई ने देश के लिए मर-मिटने वाली भारतीय परंपरा को याद करते हुए लिखा, यह शेख अयाज़ ही थे, जिन्होंने लिखा था,

भारत जिये असां जे मुआसीं त छा थियो?
सर सब्ज थिए चमन, फूले फले वतन
कंहिं शाख ते असां न हुआसीं त छा थियो?
तुहिंजे करार लाइ थकासीं त छा थियो?

1962 में भारत-चीन युद्ध के दौरान वाराणसी से प्रकाशित हिंदी दैनिक 'गांडीव' में अपने स्तंभ 'जाग मछंदर गोरख आया' में शंखनाद करते हुए अजीज किशोर ने लिखा,

खणी सुदर्शन किरिशिन आयो
राम धनुष ते बा॒णु चढायो
गुटन-गुटन, गुट-गुट-गुटन
थी गांडीव जी टनकार
चरक-चरक-चर चीनीअ जो थियो
कंधु कुल्हनि खां धार
खड़क-खड़क, खड़-खड़-खड़क
खड़की आ तलवार

राष्ट्रीय चेतना को संजीवनी प्रदान करने वाले अन्य प्रमुख सिंधी कवि रहे हैं—हरि दिल्लविट, खीभलदास फारी, नारायण श्याम, लेखराज अजीज, आशा दुर्गापुरी, चेतनदेव शर्मा, निर्मल जीवताणी, राम पंजवाणी, गौतम शिकारपुरी, बलदेव गाजरा, जादूगर हासानंद, अर्जुन शाद, सुगन आहूजा, प्रभु वफा, महाराज विष्णु शर्मा, कन्हैयालाल ठाकुर, लक्ष्मीचंद प्रेम, साधू टी. एल. वासवाणी, परसराम जिया, रामचंद मोटवाणी, खानचंद खेराणी, विश्वामित्र वासवाणी, वासदेव निर्मल, डॉ. मोती प्रकाश, होतू सिंधू प्यासी इत्यादि। कवयित्रियों में नूरी और पोपटी हीरानंदाणी ने नारी सुलभ सीमाओं के बावजूद, राष्ट्रीय चेतना फैलाने में भरपूर योगदान दिया। पोपटी हीरानंदानी ने भारत छोड़ो आंदोलन के समय लिखा,

जिति किथि खूब लग॒नि था नारा, तव्हीं गोरा असीं कारा,
नीच तव्हाँ ज़ालिम हत्यारा, असीं राम जा आहियूं प्यारा,
कुइट इंडिया-कुइट इंडिया

लंदन स्थित ब्रिटिश आर्काइव्ज में सुरक्षित दस्तावेजों के अनुसार अंग्रेजों ने भारत में सिंधी में प्रकाशित 21 पुस्तकों और एक पोस्टर को प्रतिबंधित किया था। इनमें से ग्यारह पुस्तकें कविताओं की हैं।

आजादी की लड़ाई के दौरान सिंधी पत्र-पत्रिकाओं ने ऐसी भूमिका निभाई, जिसका उदाहरण भारतीय भाषाओं में ही नहीं, अंग्रेजी पत्रकारिता में भी संभवतः नहीं मिलेगा। असहयोग आंदोलन के दौरान सन् 1921-22 में 'हिंदू' के आठ संपादक गिरफ्तार कर जेल भेजे गए थे। इनमें से एक को तीन साल, दो को दो साल, दो को डेढ़ साल और तीन को तीन माह की कैद हुई। इस समाचार पत्र का घोषणा पत्र रद्द किया गया। प्रेस जब्त किया गया। कर्मचारियों पर हर तरह का दबाव डाला गया। फिर भी छिप-छिपकर अखबार प्रकाशित किया जाता रहा। 'हिंदू' का ही अगस्त 1931 में प्रकाशित 'तिलक विशेषांक' प्रतिबंधित किया गया था।

तत्कालीन स्थितियों के मद्देनजर जे॒ठमल ने 'हिंदवासी' में शाह अब्दुल लतीफ के कलाम की एक पंक्ति को शीर्षक बनाकर संपादकीय लिखा, 'कलालिके हट, कुसण जो कोपु वहे।' इसका अर्थ था, 'कलाल की हाट पर कत्लेआम का कोप जारी है।' केवल इस संपादकीय के आधार पर जे॒ठमल को गिरफ्तार करके मुकदमा चलाया गया और दो साल कैद की सजा दी गई। देश माता सिंध सेवक, सदा-ए-सिंध हिंदू जाति, शक्ति, वतन, स्वराज दैनिक, आजाद, आजादी साप्ताहिक, भारतमाता साप्ताहिक तथा स्वराज अन्य प्रमुख पत्र थे, जिन्होंने राष्ट्रीय चेतना के जागरण में सिंध में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की।

मंघाराम मलकानी ने विभाजन पूर्व की सिंधी कहानी को छह हिस्सों में बाँटते हुए छठा दौर मुख्यतः राष्ट्रीय चेतना की कहानियों का माना है। मेमण अब्दुल मजीद सिंधी ने 'सिंधी अदब जो तारीखी जाइज़ो' में, लीलो रुचंदानी ने 'स्वतंत्रता के बाद सिंधी साहित्य जो इतिहास' में और लालसिंह अजवानी ने अपने-अपने ढंग से राष्ट्रीय चेतना की तरह कहानियों की चर्चा की है।

ध्यान देने योग्य बात है कि उपर्युक्त तेरह प्रमुख कहानीकारों में से दो मुसलमान हैं। तीन कथाकार महिलाएँ हैं। ये तथ्य प्रमाण हैं कि राष्ट्रीय चेतना के प्रसार की दिशा में हिंदुओं, मुसलमानों व महिलाओं ने समान रूप से सक्रिय भूमिका निभाई है। इन कहानियों के कथ्य आजादी की लड़ाई में महिलाओं की भूमिका, द्वितीय विश्व युद्ध की परिणतियाँ, दंगों के दुष्परिणाम, गांधी जी के नेतृत्व में लड़ी जा रही स्वतंत्रता की लड़ाई, अंग्रेजों के प्रति नफरत की भावना, हिंदू-मुस्लिम एकता, अंतरजातीय विवाह पर आधारित हैं। इनके अतिरिक्त, जिन कहानियों को रेखांकित किया जा सकता है, वे हैं—अमरलाल हिंगोरानी की कहानी 'अदो अब्दुल रहमान', कीरत बाबानी की कहानी 'मुहम्मद राम', आसानंद मामतोरा की कहानी 'हे प्रेम', होतू बदलानी की कहानी 'सोशलिस्ट पाकिस्तान', शेख अयाज की

कहानियाँ 'रफीक' और 'पाड़ेसिरी', प्रो. राम पंजवानी की कहानी 'मुहम्मद गाद्धीअ वारो', डॉ. मोती प्रकाश की कहानी 'जेनी', हरी मोटवानी की कहानियाँ 'सज़ा' और 'धरती', लोकनाथ जेटली की कहानी 'गाम जी इज़्त में', सुगन आहूजा की कहानी 'पाड़ेसिरी', कीरत महरचंदानी की कहानियाँ 'मौलाना लाल जी भाई', 'मुहम्मद रिक्शा वारो' तथा 'असीं सभु हिकु आहियूं', आनंद गोलानी की कहानी 'सिंधू', डॉ. कमला गोकलानी की कहानी 'अंदर जी अदालत', ईश्वर भारती की कहानियाँ 'झंगल' और 'दारूं' व ईश्वर चंदर की कहानी 'फहिलियल दूंहें जे विच मां'। ये सभी कहानियाँ एकता का संदेश देते हुए राष्ट्रीय चेतना की भावना को मजबूत करती हैं।

राष्ट्रीय चेतना के उन्नयन में योगदान देने वाले मौलिक सिंधी उपन्यासों की संख्या अपेक्षाकृत कम है। शेवक भोजराज का उपन्यास 'आशीर्वाद' और गुली सदारंगामी का उपन्यास 'इतिहाद' स्वतंत्रता से पूर्व लिखी गई राष्ट्रीय चेतना की वाहक कृतियाँ हैं। शेवक भोजराज के उपन्यास 'आशीर्वाद' के प्रभाव को इस तथ्य से पहचाना जा सकता है कि यह रचना गुजराती व हिंदी में अनूदित हुई थी। उन्हें भारत सरकार ने पद्मश्री से भी नवाजा था।

स्वतंत्रता के बाद मोहन कल्पना की कलम से उपन्यास 'मसुंड ऐं कांव' सामने आया। सिंधी समाज के विभाजन से जुड़े कड़वे अनुभवों को बेबाकी से चित्रित करने के बावजूद यह उपन्यास सिंधी समाज में राष्ट्रीय चेतना मजबूत करता है। सिंधी की साहित्यिक पत्रिका 'कूंज' के संपादक हरी मोटवानी का उपन्यास 'अबो' विभाजन के बहुत बाद में प्रकाशित होने के बावजूद, विभाजन-पूर्व की परिस्थितियों की पृष्ठभूमि में राष्ट्रीय चेतना को पुष्ट करता है।

1920 से 1940 के वर्षों में अन्य भाषाओं में प्रकाशित साहित्य, विशेषकर उपन्यासों के सिंधी में विपुल अनुवाद हुए। टैगोर, शरत, बंकिम, बनफूल आदि का साहित्य बाँग्ला से; आप्टे, खांडेकर, तेंदुलकर आदि का साहित्य मराठी से; गोरधन राम त्रिपाठी, मेधाणी, मड़िया, उमाशंकर, पन्नालाल, धूमकेतु आदि गुजराती से; मुंशी प्रेमचंद, भीष्म साहनी, इलाचन्द्र जोशी, अज्ञेय आदि हिंदी से अनूदित होकर जब सिंधी पाठकों के सम्मुख आए तो उनके सम्मुख राष्ट्रीय चेतना का एक बड़ा क्षितिज खुलता चला गया। अन्य भारतीय भाषाओं के साहित्य को सिंधी में अनूदित करने वालों में प्रमुख हैं—लालचंद अमर डिनोमल, परमानंद मेवाराम, भेरूमल महरचंद, ज़ेठमल परसराम, चूहड़मल हिंदूजा, मंधाराम मलकानी, राम पंजवानी, जगत आडवानी, बिहारी छाबड़िया आदि। हिंदी, बाँग्ला और गुजराती से सिंधी में अनूदित कुछ उपन्यासों में राष्ट्रीय चेतना के स्वर इतने प्रभावशाली होकर उभरे थे कि उस दौर में अनेक सिंधी भाषियों ने मूल रचनाएँ पढ़ने के उद्देश्य से हिंदी, बाँग्ला या गुजराती भाषाएँ सीखीं।

सन् 1894 में पहली बार कराची के डी.जे. सिंध कॉलेज में धार्मिक नाटक 'नल दमयंती' का मंचन किया गया। प्रारंभिक दौर में सिंध में नाटकों की आधारभूमि सुदृढ़ करने वालों में मिर्ज़ा कलीच बेग, दीवान कौड़ोमल चंदनमल खिलनानी, किशनचंद बेवस, हूंदराज दुखायल, भेरूमल महरचंद, खानचंद दरियाणी, ज़ेठमल परसराम, मंघाराम मलकाणी, राम पंजवाणी, कल्याण आदवाणी, अहमद चागला, लेखराज अजीज़ और हाजी इमाम बख्श प्रमुख थे। स्वयं रवींद्रनाथ टैगोर ने सिंध में 'रवींद्रनाथ लिटरेरी ड्रामेटिक सोसायटी' की नींव रखी। इस नाटक मंडली की ओर से राष्ट्रीय एकता, हिंदू मुस्लिम भाईचारे और राजपूतों की बहादुरी के अनेक नाटक मंचित किये गए।

आस जी टोली, साधू हीरानंद अकादमी, अनेक स्कूलों व कॉलेजों में भी नाटक मंडलियाँ बनीं। ये मंडलियाँ सामाजिक कुरीतियों के खिलाफ वातावरण बनाने वाले नाटकों के साथ स्वतंत्रता संग्राम से संबंधित नाटक प्रस्तुत करती थीं।

सिंध के विभिन्न नगरों, कस्बों के बड़े मैदानों में सत्य नारायण की कथा, चालीहा साहब (सावन माह में व्रत विशेष का पर्व), चंद्रोदय का महत्व जैसे विभिन्न धार्मिक आयोजनों के नाम पर दर्शकों को पहले एकत्र करके धार्मिक कार्यक्रम आरंभ कराया जाता। फिर समय और अवसर देखकर जैसे आजकल टी.वी. कार्यक्रमों में ब्रेक के बाद व्यापारिक विज्ञापन खुले आम दिखाए जाते हैं, उसी तरह सिंध में धार्मिक कार्यक्रमों के बीच देशभक्तिपूर्ण भाषण, गीत एवं छोटे-छोटे दृश्यों वाले नाटक दिखाए जाते। सिंध में किसी घर की बड़ी-सी छत पर विशेष आमंत्रित दर्शकों के समक्ष वतनपरस्ती के उत्सव आयोजित करने की परंपरा रही है। उनके समक्ष पहले राष्ट्रीय गीतों से आरंभ करके बाद में देशभक्तिपूर्ण नाटक भी प्रस्तुत किए जाते थे। जिन नगरों में ऐसे उत्सव होते उनमें उल्लेखनीय हैं—हैदराबाद, कराची, लाड़काणो, शिकारपुर, सक्खर इत्यादि।

उस दौर में राष्ट्रीय चेतना जाग्रत करने वाले सोलह नाटकों का और तेरह एकांकियों का उल्लेख एवं विवरण प्राप्त होता है। स्पष्ट है कि अन्य भारतीय भाषाओं की तरह सिंधी भाषा के रचनाकार राष्ट्रीय चेतना जगाने में सदैव आगे रहे हैं। भारतीय भाषाओं के साहित्य में देशभक्ति व देशप्रेम की गूँज में सिंधी रचनाकार सदैव अपना स्वर सम्मिलित करते रहे हैं। देश की स्वतंत्रता के लिए घर-बार त्याग कर दरबदर होने का जज़्बा जिस समाज ने दिखाया हो उस भाषा-भाषी समाज का साहित्यकार निश्चय ही सदा-सर्वदा राष्ट्रीय चेतना का अग्रदूत बनकर हासानंद जादूगर के शब्दों में उद्घोष करता रहेगा,

रखिजु मानु ऊंचो वतन जो अदा
झंडो झूले पंहिंजे वतन जो सदा

वृक्ष ही बनाते हैं दक्ष

उच्च अध्ययन के दौरान हमारी पाठ्य पुस्तकों की मदद से हमें यह ज्ञान तो मिल ही जाता है कि प्रकृति हमारी मित्र है और यदि प्रकृति को ईश्वरीय वरदान का सर्वश्रेष्ठ रूप कहा जाए तो गलत नहीं होगा। प्रकृति तो हम सब की हितैषी है, फिर चाहे वो नदी हो या पहाड़, जंगल हो या झरने। वृक्ष भी प्रकृति का ही रूप है।

यह तो हम सब जानते हैं कि इस संसार में सभी प्राणियों को, फिर चाहे वो हम मानव हों या पशु-पक्षी, रहने के लिए कोई-न-कोई स्थान चाहिए। हम अकसर देखते हैं कि अधिकांश पक्षी वृक्षों पर ही बसते हैं। घने

पेड़ पर बैठे तरह-तरह के पक्षी जब अपनी आवाजें निकालते हैं तो हम मानव भी बड़े प्रसन्न हो जाते हैं। लेकिन वही पक्षी जब हमारे घरों के रोशनदानों, ट्यूबलाइट, छज्जों, और तो और, किसी भी कमरे के किसी कोने में अपना घर बना लेते हैं तो हममें से अधिकांश उनके घोंसले को उठाकर बाहर फेंक देते हैं। कुछ बुद्धिजन जानते हैं कि वृक्ष उपलब्ध न होने के कारण वह हमारे घरों में प्रवेश कर जाते हैं। दरअसल, इन पक्षियों को अपने बच्चों की ठीक उसी तरह चिंता होती है जिस तरह हमलोग अपने बच्चों की सुरक्षा चाहते हैं। इसी क्रम में अनेक कीट-पतंगें भी हैं, जो वृक्ष की जड़ों और तनों पर अपना डेरा जमा लेते हैं। और तो और, कई प्रकार के जानवर भी, जिनमें बंदर सबसे मुख्य है, पेड़ों पर लगे फलों से अपनी भूख मिटाते हैं। इसके अतिरिक्त, हम सब इनसानों को भी ऐसे वृक्षों की आवश्यकता बनी रहती है, जो हमें वर्षा या धूप के दौरान अपने आँचल की छाया में पनाह दे सके, हमें सुकून दे सके। यह भी सर्वविदित है कि भगवान बुद्ध ने जिस वृक्ष के नीचे बैठकर महा ज्ञान प्राप्त किया, वह वृक्ष 'बोधिवृक्ष' के नाम से प्रसिद्ध है और भगवान बुद्ध पूरे संसार के लिए एक आदर्श बन गए।

प्रकृति हम सबकी सबसे बड़ी पालक रही है और वह भी आदिम काल से। इसी कारण हमारा साहित्य भी प्रकृति के विभिन्न रंग-रूप अपने भीतर समेटे हुए है और हमें बार-बार यही चेताता रहता है कि प्रकृति नहीं, तो हम नहीं। एक आकलन के अनुसार, वृक्ष हमेशा ही मनुष्यों के कल्याण के बारे में ही सोचते हैं। हमारे दोनों महाकाव्यों, 'रामायण' और 'महाभारत' में प्रकृति का विस्तृत वर्णन है। छायावाद युग में भी आप प्रकृति की दुनिया में खो जाते हैं। विभिन्न प्रकार की नदियाँ, पहाड़, झरने,

मुकेश पोपली

जन्मतिथि : 11 मार्च, 1959 (बीकानेर)

शिक्षा : एम.कॉम., जनसंचार एवं पत्रकारिता में स्नातकोत्तर

संप्रति : भा. स्टेट बैंक में राजभाषा अधिकारी

प्रसारण : आकाशवाणी केंद्र, बीकानेर से रचनाओं का प्रसारण

प्रकाशन : 'कहीं जरा-सा' (कहानी-संग्रह), विभिन्न समाचार-पत्रों और साहित्यिक पत्रिकाओं और ऑनलाइन पत्रिकाओं में रचनाएँ प्रकाशित, भारतीय स्टेट बैंक की गृह पत्रिकाओं का संपादन और रचनात्मक सहयोग, भारतीय रिजर्व बैंक एवं अन्य बैंकों से बैंकिंग विषयों पर आलेख पुरस्कृत।

संपर्क : मोबाइल– 7073888126

ईमेल– mukesh11popli@gmail.com

सागर, झील के साथ ही अनेक प्रकार के वृक्षों का वर्णन हमारे प्राचीन साहित्य में मौजूद है। उदाहरणतः, 'रामायण' का अशोक वृक्ष, जहाँ रावण ने सीता को बंदी बनाकर रखा था या फिर 'महाभारत' का अक्षय नाम का वृक्ष, जिसके नीचे अर्जुन को कृष्ण द्वारा अठारह अध्यायों में गीता का उपदेश दिया गया था। इन प्रसंगों से यह विदित होता है कि हमारे प्राचीन ग्रंथों में भी ऐसे वृक्षों की उपयोगिता का वर्णन किया जाता रहा है। दोनों ही महाकाव्यों और आदिकाल, वीरगाथा काल, भक्ति काल, रीति काल और आधुनिक काल में रची गई अनेक रचनाओं में प्रकृति का अंतहीन वर्णन प्राप्त होता है। इन्हीं रचनाओं में हमें प्रकृति के सबसे महत्वपूर्ण अंग वृक्ष की महिमा और उपयोगिता के बारे में भी जानकारी मिलती है, जिनसे यह स्पष्ट हो जाता है कि यह वृक्ष ही होते हैं, जो हमें दक्ष बनाते हैं।

"हमारे देश में जिस तरह नदियों की पूजा की जाती है, ठीक उसी तरह वृक्षों को भी पूज्य माना गया है। सबसे पहले पीपल के बारे में बात करते हैं, क्योंकि माना जाता है कि पीपल सबसे ज्यादा प्राचीन है। पीपल का वृक्ष सर्वत्र पूज्य है। आदिम काल में जब भगवान को पूजने के लिए मंदिर नहीं बने थे, पीपल पर जल चढ़ाया जाता था और यह परंपरा आज भी यथावत है। माना जाता है कि इसमें पितरों का वास होता है। ग्रामीण स्त्रियाँ पीपल के वृक्ष के पास से गुजरते समय सिर पर पल्ला रखकर निकलती हैं। यह प्राचीन मान्यता है कि इसकी जड़ में भगवान विष्णु रहते हैं।"

भारत प्रकृति-पूजक देश है। हमारे देश में जिस तरह नदियों की पूजा की जाती है, ठीक उसी तरह वृक्षों को भी पूज्य माना गया है। सबसे पहले पीपल के बारे में बात करते हैं, क्योंकि माना जाता है कि पीपल सबसे ज्यादा प्राचीन है। पीपल का वृक्ष सर्वत्र पूज्य है। आदिम काल में जब भगवान को पूजने के लिए मंदिर नहीं बने थे, पीपल पर जल चढ़ाया जाता था और यह परंपरा आज भी यथावत है। माना जाता है कि इसमें पितरों का वास होता है। ग्रामीण स्त्रियाँ पीपल के वृक्ष के पास से गुजरते समय सिर पर पल्ला रखकर निकलती हैं। यह प्राचीन मान्यता है कि इसकी जड़ में भगवान विष्णु रहते हैं। पीपल को पूजने से समस्त देवताओं की पूजा कर ली गई है, ऐसा भी माना जाता है। यह भी अनुभव की बातें हैं कि पीपल के वृक्ष के नीचे गाँव की पंचायतें बैठती हैं और वह स्वयं एक न्याय की प्रतिमूर्ति होते हैं। इसके नीचे न तो झूठी गवाही दी जा सकती है और न ही इसके नीचे बैठकर निर्णय देने वाले पंच किसी प्रकार के पूर्वाग्रह से ग्रसित होते हैं। पीपल के नीचे बैठकर चिंतन करने से आप तनावमुक्त हो जाते हैं। यह भी हम जानते हैं कि पीपल के पत्ते पत्तल बनाने के भी काम आते हैं और इसे ही भोजन की सबसे शुद्ध थाली माना जाता रहा है। वृक्षों में पीपल प्रकृति का सबसे बड़ा वाहक है, क्योंकि यही एकमात्र ऐसा वृक्ष है, जिससे हमें दिन के साथ-साथ रात में भी ऑक्सीजन प्राप्त होती है, जबकि अन्य वृक्ष रात को कार्बन डाई-ऑक्साइड या नाइट्रोजन गैस छोड़ते हैं। पीपल के पत्ते कुछ मामलों में रोगनाशक भी होते हैं। आयुर्वेद इलाज में इनका प्रयोग अलग-अलग रोगों के लिए बनाई जाने वाली औषधियों में होता है। इसीलिए विपरीत परिस्थितियों को छोड़कर पीपल को काटना भी अपराध माना जाता है।

नीम की बात करें तो यह खाने में हमें कड़वा लगता है, लेकिन वह हमारे अंदर की कड़वाहट मिटा देता है। हमारे बुजुर्ग तो नीम की डंडी से ही दाँत साफ करते थे। किसी का भी निधन हो जाता है तो उसके अंतिम संस्कार के बाद उस स्थान से बाहर आने से पहले हमें नीम का पत्ता मुँह में रखने के लिए दिया जाता है, ताकि हमारे मन की शुद्धता बनी रहे और हम किसी प्रकार के कड़वे वचन न बोलें। नीम मूलतः औषधीय प्रजाति है। नीम के पत्तों को उबालकर खाने से हमारे शरीर का रक्त शुद्ध हो जाता है और हम अनेक बीमारियों से, यहाँ तक कि चेचक जैसी बीमारियों से भी मुक्ति पा सकते हैं। त्वचा संबंधी समस्याओं में नीम की पत्ती का प्रयोग किया जाता है। अगर नीम के पत्तों को सुखाकर हम अलमारियों में रख दें तो वहाँ पर कीड़े उत्पन्न नहीं होते और हमारे कपड़े और दूसरे सामान सुरक्षित रहते हैं। नीम के वृक्ष पर जो फल उगता है उसे हम निबौली के नाम से जानते हैं। यह निबौली भी हमारे लिए लाभदायक होती है। माना जाता है कि नीम के रस में प्रोटीन भी पर्याप्त मात्रा में पाया जाता है।

वृक्षों में अशोक वृक्ष की क्या महत्ता है, इसका अनुमान तो सहजता से तब ही लग जाता है जब हम रामायण में सीता के अपहरण के बाद का वर्णन पढ़ते या सुनते हैं। यही वह वृक्ष था, जिसके नीचे सीता बैठकर उससे बातें करती है, अशोक उनके सारे शोक को हर लेता है। जैसा कि इसके नाम से ही स्पष्ट है, इसका कार्य ही सबको शोकमुक्त करना है। सभी जगह इसे प्राथमिकता दी जाती है, क्योंकि यही वृक्ष एक सच्चे मित्र के रूप में भी जाना जाता है और इसकी

छाया तले हमें आनंद और मंगल की अनुभूति होती है। इसके पत्तों का रंग-रूप तो मन को भाता ही है, साथ ही इसकी कोमलता भी मनभावन है। साहित्य की बहुत-सी विधाओं में अशोक वृक्ष पर बहुत कुछ लिखा गया है। दरअसल, इसे प्रणय का प्रतीक भी माना जाता है। इतना ही नहीं, इसके पत्ते और छाल औषधि के भी काम आते हैं।

बरगद को 'वटवृक्ष' भी कहा जाता है। यह पेड़ अपने आप में विरला ही होता है। यह एक ऐसा सदाबहार वृक्ष है, जिसकी डालियाँ फैलती हुई दूर तक निकल जाती हैं। इसके पत्ते जानवरों के आहार के

रूप में भी काम में लिये जाते हैं। बरगद को पूजनीय भी माना जाता है। इसके पत्ते दूध से भरे होते हैं और इन्हीं से बहुत-से जटाधारी अपने बाल धोते हैं। यही दूध इस पेड़ को सजीव भी बनाए रखता है और घना भी। इस वृक्ष के नीचे भी पंचायतें बैठती हैं और न्याय करती हैं। सत्यवान और सावित्री की कथा इस पेड़ के इर्द-गिर्द ही रची गई है, क्योंकि सत्यवान की मृत्यु बहुत छोटी आयु में ही इसी पेड़ के नीचे हो गई थी और उसकी पत्नी सावित्री यमराज से उसके प्राण वापस माँग लेती है। इसी कथा पर आधारित वट-सावित्री का व्रत देश के कई प्रांतों में आज भी किया जाता है।

आम का नाम सुनते ही प्रत्येक व्यक्ति, चाहे वो किसी भी उम्र का हो, इसे खाने के लिए लालायित हो उठता है। आम के पेड़ों की एक लंबी नामावली है। इधर बसंत आता है और उधर वृक्षों पर आम पर बौर आ आते हैं। कहा जाता है कि यदि आम नहीं होता तो शायद यह जीवन भी रसमय नहीं होता। रसमय नहीं होता तो जीवन में मंगल भावनाएँ भी संचारित नहीं होतीं। पुराणों के अनुसार आम का अतिरिक्त महत्व है। दरअसल, आम विष्णु का सबसे प्रिय फल है। हम अपने चारों ओर देखते ही हैं कि निर्जला एकादशी के दिन आम का दान किया जाता है, क्योंकि आम सबसे शुद्ध माना गया है। हमारे सभी मांगलिक कार्यों में भी आम की उपस्थिति अनिवार्य रूप से होती है, जैसे तोरणद्वार इसी से बनाए जाते हैं। इस पेड़ की लकड़ियाँ हवन में काम आती हैं। कैरी या कच्चे आमों का शरबत, जिसे आमपन्ना कहा जाता है, पीने से हमारे शरीर को ठंडक का एहसास होता है और हमें लू जैसी बीमारी भी नहीं होती है। आम से अनेक प्रकार के व्यंजन भी बनते हैं, जैसे चटनी, अचार, शर्बत, आइसक्रीम आदि। इससे आम पापड़ और अमचूर भी बनाया जाता है। हमारे पौराणिक साहित्य के साथ ही अनेक आधुनिक साहित्यकारों ने आम पर अनेक रचनाएँ लिखी हैं। आम को फलों का राजा भी कहा जाता है। हालाँकि, आम फल के रूप में बच्चों के साथ-साथ बड़े-बुजुर्गों को भी खूब भाता है, लेकिन चिकित्सा के क्षेत्र में इसको अधिक खाने की मनाही है। माना जाता है कि मधुमेह में इसका सेवन निषेध है और साथ ही, इसके अत्यधिक सेवन से वजन में भी वृद्धि होने का अंदेशा बना रहता है।

वैसे तो सभी प्रकार के वृक्ष धर्म के प्रतीक माने जाते हैं और धर्म का आचरण करने वाले उनकी पूजा करते हैं। इसी प्रकार का एक और वृक्ष है, जिसका नाम तुलसी है। प्रायः भारतीय घरों में तुलसी का एक पौधा पाया जाता है और अधिकांशतः इसे घर के आँगन में लगाया जाता है। एक अवधारणा यह भी है कि जहाँ तुलसी हो वहाँ आकाशीय बिजली भी नहीं गिरती। इस पवित्र पौधे से हमारे जीवन की दिनचर्या का प्रारंभ होता है, यह एक अतुलनीय पौधा है। तुलसी भगवान विष्णु को बहुत प्रिय है, इसलिए इसे 'हरिप्रिया' भी कहा जाता है। तुलसी को सुखदायिनी माना गया है। तुलसी को कन्या मानकर इसका विवाह भी किया जाता है और इसलिए इसे लाल चुनरी भी ओढ़ाई जाती है। तुलसी को आध्यात्मिक शक्ति का प्रतीक माना जाता है। पूजा के बाद चरणामृत में तुलसी के पत्तों को भी मिलाया जाता है। इसी प्रकार, तुलसी का हमारे दैनिक पेय पदार्थ, चाय में भी प्रयोग किया जाता है। बुखार, गले में खराश आदि में तुलसी के पत्ते औषधि का काम करते हैं। तुलसी के अर्क से विभिन्न औषधि भी बनाई जाती है। तुलसी हमें स्वस्थ वातावरण प्रदान करती है, यह बात वैज्ञानिक भी सिद्ध कर चुके हैं।

वृक्ष प्रकृति द्वारा प्रदत्त अनमोल और अतुलनीय उपहार हैं। वृक्ष सभी प्रकार की संस्कृति के वाहक हैं और हमारे जीवन के महत्वपूर्ण क्षणों में मददगार भी। उपरोक्त वर्णित वृक्षों के अतिरिक्त,

अन्य बहुत-से वृक्ष हैं, जिनकी छाल, पत्ते, फल और फूल हमारे जीवन को निरोग भी बनाते हैं और जीवन में एक नया संचार भी पैदा करते हैं। चंदन के वृक्ष का अपना आर्थिक महत्व है, जिसकी लकड़ी में सुगंध होती है। इमारती कामों के लिए साल, शीशम, सागवान जैसे वृक्ष काम आते हैं।

नारियल के वृक्ष समुद्री इलाकों में अधिकतर पाए जाते हैं और इसका पानी हमारे शरीर के अनेक रोगों के उपचार में सहायक रहता है। देवदार वृक्ष भी सुगंध लिये होता है और इसे भी औषधि-निर्माण के काम में लिया जाता है। गूलर के वृक्ष भी हमारे शरीर को शीतलता प्रदान करते हैं और अनेक रोगों को दूर भगाने में सहायक है। बुरांश के फूल बेहद सुंदर होते हैं। उत्तराखंड और हिमाचल में मुख्य रूप से पाए जाने वाले इस वृक्ष के फूलों से शर्बत बनता है, जो हृदय रोग दूर करने में सहायक होता है।

खेजड़ी नाम का वृक्ष प्रमुख रूप से मरुस्थल में पाया जाता है। इसका अपना साहित्यिक और सांस्कृतिक महत्व है। रेगिस्तान में इस वृक्ष के पत्ते पशुओं के चारे के रूप में तो काम आते ही हैं और इसका फल सांगरी के रूप में हमारे सामने आता है, जो सब्जी के रूप में काम में लिया जाता है। इसका एक दूसरा रूप शमी भी है। इसके अतिरिक्त, ताड़ एक खास ऊँचाई वाला वृक्ष होता है, जो बेहद उपयोगी है। केला, सेब, संतरा, मौसमी और अनेक प्रकार के फलों और फूलों वाले पौधे भी हमारे जीवन को विटामिन और खुशियाँ प्रदान करते हैं। इनके सेवन से हमारे शरीर में उत्पन्न होने वाली अनेक बीमारियों को दूर भगाने में भी मदद मिलती है।

एक और महत्वपूर्ण औषधियुक्त वृक्ष है, जिसे हम आँवला के नाम से जानते हैं। आँवला विटामिन सी और आयरन से भरपूर होता है और इसे घर के बाग-बगीचे में भी लगाया जा सकता है। माना जाता है कि इसके वृक्ष में समस्त देवी-देवताओं का निवास होता है और इसीलिए कार्तिक मास की शुक्लपक्ष की नवमी को इसकी पूजा की जाती है।

वृक्षों का महत्व हमें बचपन में ही बता दिया जाता है और हम अपने आस-पास के वातावरण में भी अनेक प्रकार के वृक्ष देखा करते हैं और अपने बुजुर्गों से भी हमें इनके बारे में अनेक प्रकार की जानकारियाँ मिलती रहती हैं। यह वृक्ष जहाँ एक ओर हमारे पर्यावरण को शुद्ध रखने में सहायता प्रदान करते हैं, वहीं इनसे हमारी संस्कृति

"पिछले कुछ वर्षों से प्रकृति का रौद्र रूप न केवल पहाड़ों में, बल्कि मैदानों में भी देखा गया है। इससे होने वाले आर्थिक नुकसान का आकलन तो समय-समय पर होता रहता है, लेकिन इसके मूल में जाने की अपेक्षा हम एक-दूसरे पर दोषारोपण करते आ रहे हैं। बेहतर होगा कि किसी भी परियोजना में वृक्षों को बचाते हुए काम किया जाए, नहीं तो वो दिन दूर नहीं, जब हम फलदार और उपयोगी वृक्षों को हमेशा के लिए खो देंगे, जिसका प्रभाव हमारी आने वाली पीढ़ियों के जीवन पर भी पड़ेगा। अपवादस्वरूप कुछ लोग चुपचाप वृक्षारोपण के काम में निरंतर लगे हुए हैं। वे ही प्रकृति के सच्चे उपासक हैं।"

को भी जीवित बनाए रखा जा सकता है। दुःख इस बात का है कि यह सब जानते-बूझते हुए भी हम इनको महत्व नहीं देते। हम लगातार जंगलों को काटते जा रहे हैं, कभी जमीन की लालच में तो कभी विकास के नाम पर। परिणामतः, हमारा परिवेश वृक्षविहीन होता जा रहा है। पृथ्वी को वृक्षविहीन कर अनेक आपदाओं को हम स्वयं निमंत्रण दे रहे हैं और नाम प्रकृति का लगा रहे हैं।

पुराने समय में वनस्पति को पर्याप्त महत्व दिया जाता था और उसके संरक्षण की अनेक योजनाएँ बनाई जाती थीं। सरकारी विभाग और निजी संस्थाएँ जनता का भी इसमें सहयोग लेती थीं। लेकिन इन दिनों देखा जा रहा है कि केवल प्रसिद्धि पाने के लिए वृक्षारोपण का नाटक किया जा रहा है। साथ ही, विकास के नाम पर नए आवास और दूसरी परियोजनाओं के निर्माण के लिए वृक्षों को बिना उनकी नस्ल और उपयोगिता जाने अंधाधुंध रूप से काटा जा रहा है।

पिछले कुछ वर्षों से प्रकृति का रौद्र रूप न केवल पहाड़ों में, बल्कि मैदानों में भी देखा गया है। इससे होने वाले आर्थिक नुकसान का आकलन तो समय-समय पर होता रहता है, लेकिन इसके मूल में जाने की अपेक्षा हम एक-दूसरे पर दोषारोपण करते आ रहे हैं। बेहतर होगा कि किसी भी परियोजना में वृक्षों को बचाते हुए काम किया जाए, नहीं तो वो दिन दूर नहीं, जब हम फलदार और उपयोगी वृक्षों को हमेशा के लिए खो देंगे, जिसका प्रभाव हमारी आने वाली पीढ़ियों के जीवन पर भी पड़ेगा। अपवादस्वरूप कुछ लोग चुपचाप वृक्षारोपण के काम में निरंतर लगे हुए हैं। वे ही प्रकृति के सच्चे उपासक हैं। हमें भी उनकी तरह इस काम में सहयोग देना चाहिए।

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम और प्रेमचंद की कहानियाँ

भारत का स्वतंत्रता संग्राम अंग्रेजी साम्राज्यवाद के भारत में प्रवेश के साथ ही शुरू हो गया था। यहाँ के देसी शासकों, सामान्य जनता और आदिवासियों ने अंग्रेजी दासता को स्वीकार नहीं किया, लेकिन पहले ईस्ट इंडिया कंपनी और बाद में महारानी विक्टोरिया के शासन ने साम, दाम, दंड और भेद के सभी हथकंडों से भारतीय समाज को बाँटा और अपने लिए अनुकूल परिस्थितियों का निर्माण किया। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के गठन के बाद

जब स्वदेशी चेतना का भारतीय जनमानस में धीरे-धीरे प्रसार होने लगा और भारतीयों को इस औपनिवेशिक साम्राज्यवाद के वास्तविक आशय समझ आने लगे, तब भारतीय स्वतंत्रता संघर्ष राष्ट्रीय आंदोलन में बदल गया। यह कार्य यकायक नहीं हुआ और इसमें भारतीयों की दो-तीन से भी अधिक पीढ़ियों की आहुति हुई। वस्तुतः, वर्ष 1915 में महात्मा गांधी के भारत आगमन के बाद भारतीय स्वाधीनता संघर्ष का चरित्र राष्ट्रीय स्वरूप ग्रहण करता है और फिर यह बहुआयामी भी होता गया।

प्रेमचंद का संपूर्ण साहित्य भारतीय स्वतंत्रता संघर्ष का हमसफर और हमकदम है। प्रेमचंद को महात्मा गांधी का निष्ठावान अनुयायी कहा गया और यह माना जाता रहा कि कि प्रेमचंद ने गांधी के आंदोलन को साहित्य में रूपाकार किया। लेकिन ऐसा नहीं है कि गांधी जी के आगमन से पूर्व प्रेमचंद स्वतंत्रता संघर्ष से अनभिज्ञ थे और उनमें राष्ट्रीय चेतना का अभाव था। 'स्वदेशी आंदोलन' शीर्षक से 16 नवंबर, 1905 को एक लेख में उन्होंने कहा था, 'हिंदुस्तान के लगभग सभी प्रतिष्ठित पत्रों और पत्रिकाओं ने इस देशभक्तिपूर्ण आंदोलन का समर्थन किया है और जो पहले थोड़ा हिचकिचा रहे थे उनका भी अब विश्वास पक्का होता जाता है। मगर अभी अकसर भलाई चाहने वालों की जबान से सुनने में आता है कि वह उन मुश्किलों का सामना करने के काबिल नहीं हैं, जो आंदोलन के रास्ते में निश्चय ही आएँगी। मिसाल के लिए कपड़ा जितना हिंदुस्तान में बनता है, उसका चौगुना विलायत से आता है, तब जाकर इस देश की जरूरतें पूरी होती हैं। क्योंकर संभव है कि यह देश बिना वर्षों के निरंतर अभ्यास और जिगरतोड़ कोशिश के परदेसी कपड़ा बिल्कुल रोक दे।' प्रेमचंद ने ऐसी अनेक कहानियाँ लिखी हैं, जो विदेशी वस्त्रों के त्याग और वस्त्रालयों के बाहर कांग्रेस कार्यकर्ताओं के धरनों-आंदोलनों से संबंधित हैं, यह आकस्मिक नहीं हुआ।

पल्लव

जन्म : 2 अक्तूबर (राजस्थान के स्वतंत्रता संग्राम सेनानी परिवार में)

शिक्षा : पी-एच.डी., एम.ए. (हिंदी)

प्रकाशन : 'कहानी का लोकतंत्र', 'लेखकों का संसार', साहित्य अकादेमी से कवि नंद चतुर्वेदी पर मोनोग्राफ, 'मीरा : एक पुनर्मूल्यांकन', 'गपोड़ी से गपशप', 'एक दो तीन', 'अस्सी का काशी' शीर्षक पुस्तकें संपादित। 'मैं और मेरी कहानियाँ' का संपादन। 'बनास जन' पत्रिका का 2008 से संपादन-प्रकाशन।

सम्मान : भारतीय भाषा परिषद्, कोलकाता का 'युवा साहित्य पुरस्कार', वनमाली सम्मान, आचार्य निरंजननाथ सम्मान, राजस्थान पत्रिका 'सृजन पुरस्कार', पाखी आलोचना सम्मान सहित अनेक पुरस्कार एवं सम्मान से सम्मानित।

संप्रति : दिल्ली विश्वविद्यालय के हिंदू कॉलेज के हिंदी विभाग में एसोसिएट प्रोफेसर

संपर्क : मोबाइल– 8130072004
ईमेल– pallavhindu@gmail.com

यहाँ प्रसिद्ध स्वतंत्रता सेनानी दादाभाई नौरोजी को भी याद कर लेना चाहिए, जिन्होंने सबसे पहले धन-निष्कासन का सिद्धांत दिया था और स्वदेशी का आशय स्पष्ट किया था। दादाभाई नौरोजी ने अपनी पुस्तक 'पोवर्टी ऐंड अनब्रिटिश रूल इन इंडिया' में यह अवधारणा प्रस्तुत की थी। उन्होंने धन-निष्कासन को सभी बुराइयों की बुराई (एविल ऑफ एविल्स) की संज्ञा दी थी। 1922 में छपी प्रेमचंद की कहानी 'सुहाग की साड़ी' में दृश्य है—'विदेशी कपड़ों की होलियाँ जलाई जा रही थीं। स्वयंसेवकों के जत्थे भिखारियों की भाँति द्वारों पर खड़े हो-हो कर विलायती कपड़ों की भिक्षा माँगते थे और ऐसा कदाचित् ही कोई द्वार था, जहाँ उन्हें निराश होना पड़ता हो। खद्दर और गाढ़े के दिन फिर गए थे। नयनसुख, नयनदुख, मलमल और तनजेब तनबेध हो गए थे।' यह कहानी प्रेमचंद की स्त्री दृष्टि भी बताती है कि वे किस तरह स्त्री-पुरुष समानता के पक्षधर हैं तथा समाज-निर्माण में स्त्रियों की बराबरी की भागीदारी चाहते हैं। इस प्रसंग में उनकी कहानी 'पत्नी से पति' की गोदावरी जैसी पात्र उल्लेखनीय है, जो कांग्रेस में शामिल होने पर पहले पति का विरोध करती थी, किंतु जब उसने आत्मसम्मान को राष्ट्रसम्मान से जोड़ा तब अपने पति से कहती है, "बड़प्पन सूट-बूट और ठाट-बाट में नहीं है। जिसकी आत्मा पवित्र हो, वही ऊँचा है।" 'शराब की दूकान' की मिसेज सक्सेना याद आती हैं, जो गांधी जी की सच्ची सिपाही हैं और जिन्हें रत्तीभर भी हिंसा स्वीकार नहीं है। वे जयराम के प्रहार खुद सहती हैं और उनका सत्याग्रह शराबियों को भी शर्मिंदा कर देता है। प्रेमचंद की कहानी 'चकमा' में भी विदेशी कपड़ों का मामला आया है। 'बौड़म' (1923) एक सुराजी की कथा है, जो धनी परिवार का होकर भी गाँव की धूल छानता फिरता है। वह कहता है, "जब मेरे हजारों भाई जेल में पड़े हुए हैं, उन्हें गजी का गाढ़ा तक पहनने को मयस्सर नहीं तो मेरी ग़ैरत गवारा नहीं करती कि मैं मीठे लुकमें उड़ाऊँ और चिकन के कुर्ते पहनूँ, जिनकी कलाइयों और मुड्ढों पर सीजनकारी की गई हो।" समझ में आता है कि ऐसे बौड़म गांधी जी के उसूलों के कायल हैं, जो अस्पृश्यता निवारण, ग्रामोत्थान और इस तरह के अनेक रचनात्मक कार्यक्रमों को जीवन का लक्ष्य बनाए हैं। प्रेमचंद लिखते हैं कि, 'जो स्वार्थ पर आत्मा की भेंट कर देता है वह चतुर है, बुद्धिमान है। जो आत्मा के सामने, सच्चे सिद्धांत के सामने, सत्य के सामने, स्वार्थ की, निंदा की परवाह नहीं करता वह बौड़म है, निर्बुद्धि है।' कहना न होगा कि हमारा स्वतंत्रता संग्राम ऐसे ही बौड़म समझे जाने वाले साधारण, किंतु देश से प्रेम करने वाले लोगों ने लड़ा और जीता।

"अंग्रेज उपनिवेशवाद की एक बुनियाद यह थी कि वे दावा करते थे कि असभ्य हिंदुस्तानियों को सभ्य बनाने के लिए ईश्वर के आदेश से वे यहाँ आए हैं। प्रेमचंद अपने देश के लोगों पर लगाये गए इस आरोप से खिन्न होते हैं, किंतु वे यह भी जानते हैं कि भारतीय जनता में अनेक दुर्गुण हैं, जिनसे लड़ना होगा। उनकी प्रारंभिक अनेक कहानियों पर इस सुधारवाद और सदिच्छा का गहरा असर देखा जा सकता है।"

प्रेमचंद के पहले कहानी-संग्रह 'सोज़ेवतन' से ही राष्ट्रीयता और देशप्रेम की कहानियाँ मिलने लगती हैं। इस संग्रह का प्रकाशन वर्ष 1908 में हुआ था और तब प्रेमचंद नवाबराय के नाम से लिखते थे। 'सोज़ेवतन' उर्दू का शब्द है, जिसका अर्थ है—'देश का मातम या शोक'। हमीरपुर के जिला कलेक्टर ने इस संग्रह को 'देशद्रोही' करार दिया और इसकी सारी प्रतियाँ जलवाकर नष्ट कर दीं। इसके बाद उन्होंने नवाबराय नाम का त्याग कर दिया और प्रेमचंद हो गए। 'दुनिया का सबसे अनमोल रतन' कहानी में दिलफ़रेब की शर्त पूरा करने के लिए दिलफ़िगार दुनिया के सबसे अनमोल रतन की खोज में निकल पड़ा है और उसे जो अनमोल रतन मिला है उसका वर्णन प्रेमचंद ने किया है। यहाँ मरते हुए सैनिक का 'भारत माता की जय' कहना और बताना कि 'हमारे बाप-दादा का देश आज हमारे हाथ से निकल गया और इस वक्त हम बेवतन हैं' बहुत मूल्यवान कथन है, जो हिंदी कथा साहित्य में देशप्रेम और अंग्रेजी औपनिवेशिकता के कालखंड में स्वतंत्रता का उद्घोष है। कहानी का अंत जिस वाक्य से हुआ है, वह भी न भूलने योग्य है, 'खून का वह आखिरी कतरा, जो वतन की हिफाजत में गिरे दुनिया की सबसे अनमोल चीज है।'

अंग्रेज उपनिवेशवाद की एक बुनियाद यह थी कि वे दावा करते थे कि असभ्य हिंदुस्तानियों को सभ्य बनाने के लिए ईश्वर के आदेश से वे यहाँ आए हैं। प्रेमचंद अपने देश के लोगों पर लगाये गए इस आरोप से खिन्न होते हैं, किंतु वे यह भी जानते हैं कि भारतीय जनता में अनेक दुर्गुण हैं, जिनसे लड़ना होगा। उनकी प्रारंभिक अनेक कहानियों पर इस सुधारवाद और सदिच्छा का गहरा असर देखा जा सकता है। अनेक कहानियों में शहर में रहने वाले पढ़े-लिखे बाबू साहब जैसे पात्र हैं, जो गाँवों में जाकर वहाँ की परेशानियाँ समझते हैं और ग्रामीण जीवन से अपने को जोड़ते हैं। वर्ष 1917 में छपी कहानी 'उपदेश' के पंडित देवरत्न शर्मा कहते हैं, "मैं आप अपनी ही दृष्टि में गिर गया हूँ। मैं सारी जाति के उद्धार का बीड़ा उठाये हुए हूँ, सारे भारतवर्ष के लिए प्राण देता फिरता हूँ, पर अपने घर की खबर ही नहीं। जिनकी रोटियाँ खाता हूँ उनकी तरफ से इस तरह उदासीन हूँ! अब इस दुरवस्था को समूल नष्ट करना चाहता हूँ।" इस कहानी में बार-बार जाति की सेवा या उद्धार की बात आई है अर्थात भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के उस दौर के बड़े नेताओं—लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक, विपिन चंद्र पाल, लाल लाजपत राय और गोपाल कृष्ण गोखले जैसे नेताओं के आह्वानों तथा व्याख्यानों का साफ-साफ असर इन कहानियों में देखा जा सकता है।

देशप्रेम की कहानियों का आशय केवल राष्ट्रीय आंदोलन के राजनैतिक सवालों को ही संबोधित करना नहीं है, अपितु अपने देश के लोगों के जीवन के उन तमाम पक्षों को देखना-समझना भी है, जिनसे जीवन बेहतर होता है। स्वदेशी आंदोलन के बाद गांधी जी के नेतृत्व में जब राष्ट्रीय आंदोलन ने गति पकड़ी तो उसमें वे सभी पक्ष भी सम्मिलित हो गए, जिन्हें गांधी जी का रचनात्मक कार्यक्रम कहा जाता है। वर्ष 1921 में 'ज़माना' में छपी कहानी 'दुस्साहस' में शराबबंदी कार्यक्रम का एक चित्र आया है, जिसमें मुंशी मैकूलाल मुख्य चरित्र हैं। वे शराब की बोतल तोड़ देते हैं। वस्तुतः, प्रेमचंद नैतिक आशयों को रचनात्मक कौशल के साथ कहानी में इस तरह पिरो देते हैं कि पाठक उनसे इनकार नहीं कर पाता।

स्वराज्य और राष्ट्रीयता का यह स्वर केवल शहरों तक सीमित नहीं था, अपितु इसकी अनुगूँज गाँवों में भी सुनाई दे रही थी। जुलाई 1921 में प्रकाशित उनकी कहानी 'लाग-डाँट' को पढ़ने पर मालूम होता है कि वे स्वराज्य की कैसी परिभाषा गढ़ रहे थे। कहानी बताती है कि स्वराज्य आंदोलन अब भारतीय जनमानस का व्यापक विषय बन गया है। इस पूरे परिदृश्य में क्या सभी भारतीय सुराजी (स्वराज्य समर्थक) हो गए थे? सभी शिक्षित लोगों ने औपनिवेशिकता का विरोध पक्ष चुन लिया था? ऐसा संभव नहीं हो सकता। प्रेमचंद अपने समय के अंतर्विरोधों को दर्शाने और उनसे मुकाबला करने से पीछे नहीं हटते। 'शतरंज के खिलाड़ी' (1924) उनकी प्रसिद्ध कहानी है, जो 1857 के दिनों में 'बड़े लोगों' के आचरण और सिद्धांतों की कलई खोलती है। 'आदर्श विरोध' का प्रकाशन 1921 में हुआ और यह अत्यंत उच्च शिक्षित परिवार के मुखिया दयाकृष्ण मेहता की कहानी है, जिसे वायसराय ने अपनी कार्यकारिणी में शामिल कर लिया था। जाहिर है यह अत्यंत सम्मान और गौरव की बात थी। पढ़े-लिखे महाशय मेहता इस सम्मानित पद को प्राप्त कर वायसराय की भाषा ही बोलने लगते हैं, जिसे प्रेमचंद निशाने पर लेते हैं।

1920 में उर्दू में लिखी गई कहानी 'बाद अज़मर्ग' 1927 में हिंदी में आई और शीर्षक हुआ, 'मृत्यु के पीछे'। यह कहानी प्रेमचंद के उसी प्रिय राष्ट्रबोध का नया भाव रूपांतरण है, जो 'दुनिया का सबसे अनमोल रतन' में भी था। इसका आशय है कि प्रेमचंद जरूरी लगने वाली बात को बार-बार कह सकते थे और कहते भी थे। नमक आंदोलन के दिनों में प्रेमचंद की कहानी 'समर यात्रा' ('हंस', अप्रैल 1930) आई थी, जिसमें स्वराजियों का जुलूस गाँव में आया है और दल नायक लोगों से कह रहा है, "आपके हाथों से सभी रोजगार छिनते जाते हैं, आपका सर्वनाश हो रहा है, पर आप आँखें खोलकर नहीं देखते। पहले लाखों भाई सूत कातकर, कपड़े बुनकर गुजर करते थे। अब सब कपड़ा विदेश से आता है। पहले लाखों आदमी यहीं नमक बनाते थे। अब नमक बाहर से आता है। यहाँ नमक बनाना जुर्म है। आपके देश में इतना नमक है कि सारे संसार का दो सौ साल तक उससे काम चल सकता है, पर आप सात करोड़ रुपये सिर्फ नमक के लिए देते हैं। आपके ऊसरों में, झीलों में नमक भरा पड़ा है, आप उसे छू नहीं सकते। शायद कुछ दिनों में आपके कुओं पर भी महसूल लग जाय। क्या आप अब भी यह अन्याय सहते रहेंगे?"

प्रेमचंद की इन कहानियों में राष्ट्रीय आंदोलन के जीवंत दृश्य समाए हैं। 'समर यात्रा' और 'जुलूस' में आए स्वतंत्रता प्रेमी सुराजियों के जुलूस देखिए तो उस महान संग्राम की न भूलने वाली छवि आँखों के आगे तैर जाती है। प्रेमचंद ने अपने समय की हलचलों को केवल दर्ज ही नहीं करते हैं, बल्कि वे इनकी महत्ता को ठीक तरह से जान-समझकर इनके साथ चल पड़ते हैं। कहना न होगा कि प्रेमचंद ने अपनी कलम से वही काम किया, जो गांधी जैसे राष्ट्र नायक अपने राजनैतिक आंदोलन से कर रहे थे। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भी प्रेमचंद का यह लेखन प्रासंगिक बना हुआ है। विख्यात आलोचक प्रो. नवलकिशोर ने इस संदर्भ में उचित ही लिखा है, 'प्रेमचंद का साहित्य साम्राज्यवाद के साथ आंतरिक उपनिवेशवाद के विरोध का भी साहित्य है। इसलिए वह समतावादी समाज के स्वप्न को जगाए रखने की प्रेरणा देने वाला साहित्य है, जो उसे तब तक प्रासंगिक बनाए रखेगा जब तक कि वह स्वप्न एक यूटोपिया के बदले एक वास्तविक संभावना में नहीं बदलता।'

हमारी स्वतंत्रता को पचहत्तर वर्ष हो चुके और राष्ट्र राज्य के रूप में भारत का संसारभर में सम्मानित स्थान है, लेकिन प्रेमचंद की कहानियाँ याद दिलाती हैं कि यह स्वतंत्रता कितनी कुर्बानियों, कितने परिश्रम और कितनी लंबी साधना का सुपरिणाम थी। इसे बनाए रखना हम सभी देशवासियों का पहला दायित्व है और इसके लिए आवश्यक है कि हम जितना प्रेम अपने देश से करते हैं उतना ही प्रेम और आदर अपने सभी देशवासियों को दें, प्रेमचंद का समूचा लेखन यही संदेश देता है।

समीक्षक : **डॉ. राजेश कुमार व्यास**

लेखक : **नर्मदा प्रसाद उपाध्याय**

प्रकाशक : राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, नई दिल्ली-110070

पृष्ठ : 136

मूल्य : रु. 165/-

भारतीय कला और अंतरानुशासन

नर्मदा प्रसाद उपाध्याय की सद्यः प्रकाशित कृति 'भारतीय कला और अंतरानुशासन' इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है कि इसमें कलाओं की भारतीय दृष्टि के साथ साहित्य और इतिहास से जुड़े महती संदर्भ हैं। नर्मदा जी के पास कहन की रसिक-दृष्टि है। इस दृष्टि में भारतीय काव्य, लघु चित्र शैलियों में निहित विषय-निरूपण हमारे पारंपरिक संगीत, रागमालाओं में घुले प्रकृति के रंग समाए हैं। कैसे कोई कला दूसरी कला में घुलकर पूर्णता को प्राप्त करती है और कैसे साहित्य और इतिहास मिथकों के आवरण-अनावरण में मानव मन को मथता है, यह पुस्तक हमें गहराई से समझाती है।

इसमें कुल बारह लेख संकलित हैं। पहले लेख 'चित्रकला और उसके अंतरानुशासनिक संबंध' में वह भारतीय कला की अखंड सौंदर्य-दृष्टि की विवेचना में चित्रांकन के लिए बरते शब्दों के भाव-भव में ले जाते संगीत के प्रमुख रागों, रागपत्नियाँ, रागपुत्र, रागपुत्रियाँ परिवार की सूत्रबद्धता में रागमाला के मर्म से हमें साक्षात् कराते हैं। चित्रकारों द्वारा तुलिका से दिए संगीत के मूर्त रूप में निर्मित चित्रशैलियों की सूक्ष्म दृष्टि यहाँ है।

साहित्य और इतिहास की स्वतंत्र और निरपेक्ष दृष्टि पर अपने महती चिंतन में नर्मदा प्रसाद उपाध्याय स्थापित करते हैं, 'भारतीय परिप्रेक्ष्य में साहित्य और इतिहास एक-दूसरे से अनुस्यूत हैं, लेकिन उनकी अभिव्यक्ति भिन्न है। लक्ष्य दोनों का एक है, वह है चेतना का बार-बार पुनर्नवीनीकरण करना। इतिहास यदि देह है तो साहित्य उसकी आत्मा।' उन्होंने पुस्तक में सनातन, बौद्ध, जैन और हिंदी साहित्य के साथ लोक साहित्य के उद्धरणों में इतिहास और साहित्य की वैज्ञानिक दृष्टि भी दी है।

'प्रकृति और संस्कृति के अंतर्संबंध' शीर्षक के अंतर्गत नर्मदा प्रसाद उपाध्याय ने अंतःसंबंधों को गहराई से समझाया है। वह लिखते हैं, 'अंतःसंबंध वह है जो अपनी पहचान छुपाकर किसी और की पहचान रच दे।' इस कथन के संदर्भ में ही वह फिर पुस्तक में दिनकर, विद्यानिवास मिश्र, कुबेरनाथ राय आदि के चिंतन आलोक में यह स्थापित करते हैं कि संस्कृति जीवन रस का तिरस्कार नहीं, नकार नहीं एक अलग ढंग से स्वीकार है। भारतीय संस्कृति जीवन को भोग्य रूप में नहीं जीवन को भाव रूप में देखती है। अपनी बात को वह कविताओं, श्लोक और दूसरे संदर्भों से व्याख्यायित करते प्रकृति और संस्कृति के अंतःसंबंध ही नहीं समझाते, बल्कि खजुराहो के शिल्प, भारतीय लघु चित्रों, कालिदास के लिखे में ले जाते प्रकृति और जीवन के उदात्त पक्षों से हमें साक्षात् कराते हैं।

नर्मदा जी का मानना हैं कि सृजन और सृजन को परखने की कोशिश बिल्कुल अलग होती है। कला, समुद्र की अतल गहराई में स्थिर और निष्कम्प जल की तरह है। वह न तो रूप है, न रंग, न आकृति, न शिल्प, न तकनीक और न ही कोई कौशल। भारतीय सौंदर्य दृष्टि ही वास्तव में भारतीय कला दृष्टि है।

इस संबंध में नर्मदा जी हमारी कलाओं में निहित गूढ़ गुणों से साक्षात् कराते पाठकों को निरंतर रस से सराबोर करते राधा के उकेरे चित्रों का उदाहरण देते हैं। वह लिखते हैं, 'कलाकारों ने उनके रूप सौंदर्य, सौष्ठव के जो अंकन किए हैं वह इतने समर्पण भाव से किए हैं कि वे सौंदर्य अंकन नहीं रह गए, बल्कि उनमें सौंदर्य का राधांकन हुआ है।'

पुस्तक का 'भारतीय लघुचित्र तथा संस्कृत रीतिकालीन काव्य का अंतरावलंबन' लेख इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है कि इसमें रीतिकालीन काव्य के संदर्भों में लघु चित्रों के वर्ण, रेखाओं, रंग आदि के साथ निहित भावों का विषद् विवेचन किया है। वह बिहारी के चित्रकार, कवि मन की थाह लेते जयपुर कलम के उसमें प्रभाव और जयपुर दरबार से उनके संबंधों के बारे में भी महती जानकारियाँ देते हैं।

पुस्तक इस रूप में भी पठनीय है कि इसमें हिंदी साहित्य में सांस्कृतिक दृष्टि के निवेश, कृष्ण के वेणुवादक स्वरूप और देशज कलाएँ और ज्ञान परंपरा विषयों के आलोक में अनेक जानकारियाँ दी गई हैं। नर्मदा जी भारतीय लघु-चित्रों और काव्य पर गहन दृष्टि रखते हैं। उनके पास साहित्य और संस्कृति के दुर्लभ संदर्भ हैं।

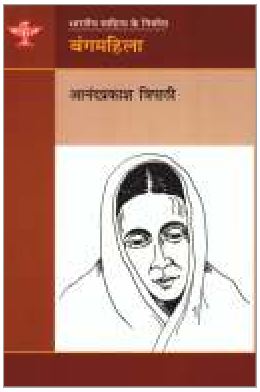

समीक्षक : **डॉ. शकुंतला कालरा**

लेखक : **आनंदप्रकाश त्रिपाठी**

प्रकाशक : साहित्य अकादेमी, रवीन्द्र भवन, नई दिल्ली

पृष्ठ : 104

मूल्य : रु. 100/-

बंगमहिला

कृति 'बंगमहिला' आनंदप्रकाश त्रिपाठी द्वारा संपादित 'भारतीय साहित्य के निर्माता' शृंखला के अंतर्गत एक महत्वपूर्ण कड़ी है, जो 'बंगमहिला' नाम से विख्यात श्रीमती राजेन्द्र बाला घोष के व्यक्तित्व एवं रचनाकर्म को उद्घाटित करती है। सृजन एवं आलोचना, दोनों में अपनी समान उपस्थिति दर्ज कराने वाले आनंदप्रकाश त्रिपाठी ने बड़े व्यवस्थित ढंग से बंगमहिला के व्यक्तित्व और बहुआयामी कृतित्व का अत्यंत विद्वत्तापूर्ण एवं सारगर्भित विवेचन-विश्लेषण किया है। इस पुस्तक में उनकी हर विधा को स्थान दिया गया है। हिंदी में आने से पहले बंगमहिला ने 'प्रवासी प्रभृति' बाँग्ला मासिक पत्रिका में प्रबंध (निबंध) लिखे थे, जो दुर्भाग्य से आज उपलब्ध नहीं हैं।

यह पुस्तक कुल चार खंडों में विभाजित है—जीवन एवं सृजन परिवेश, रचना-संसार, स्त्री-जीवन तथा अन्य संदर्भ एवं भाषा और शिल्प। प्रथम खंड में बंगमहिला के जीवन-संघर्ष एवं चुनौतियों पर प्रकाश डाला गया है। उन्होंने युवावस्था में वैधव्य के मर्मांतक दंश और पिता, पति, पुत्र आदि प्रियजनों की मृत्यु के बिछोह को झेलते हुए अपने उत्कृष्ट लेखन के द्वारा श्रेष्ठ गद्यकारों में अपना स्थान बनाया। 'परिशिष्ट' में उनकी दो मौलिक कहानियाँ हैं—'चंद्रदेव से मेरी बातें' और 'दुलाईवाली'। 'चंद्रदेव से मेरी बातें' में लेखिका ने चंद्रदेव से कुछ प्रश्न पूछे और उनके समाधान माँगने का निवेदन किया है। साथ ही, अंग्रेजों की नीतियों के प्रति भारतीयों की उदासीनता पर व्यंग्य भी किया है। दूसरी कहानी 'दुलाईवाली' हिंदी की पहली मौलिक कहानी है। इसका ऐतिहासिक महत्व है। 'दुलाईवाली' एक कथानक विहीन कहानी है, जिसमें औत्सुक्य ही इसका प्रमुख आकर्षण है। एक घटना को आधार बनाकर रचा गया इसका विन्यास पाठकों में निरंतर उत्सुकता की सृष्टि करता चलता है।

लेखक ने बंगमहिला के सृजन की मूलभूत विशेषताओं को अंकित करते हुए उसे बीसवीं सदी के आरंभिक दशकों की नियामक लेखिका माना है। अपने 'संपादकीय' में वह लिखते हैं, 'बंगमहिला हिंदी नवजागरण की दृष्टिसंपन्न लेखिका थीं। हिंदी प्रदेश के सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश एवं जन-जीवन से उनके आत्मीयतापूर्ण संबंध का प्रभाव उनके लेखन, भाषा, अभिव्यक्ति और विचारों में सघन रूप से देखा जा सकता है। उनका साहित्य राष्ट्र-प्रेम और स्वदेशी चेतना से अनुप्राणित है। उसमें जीवन का यथार्थबोध और आदर्श की प्रतिष्ठा समान भाव से हुई है।'

हिंदी महिला रचनाकारों में बंगमहिला का सृजनकर्म युगीन चेतना से संपन्न है। बंगमहिला अपने समय की महत्वपूर्ण लेखिका थीं, जिन्होंने कहानी, निबंध, जीवनी आदि गद्य की विविध विधाओं में मौलिक और अनुवाद, दोनों कोटि का सृजन किया। उनकी रचनाओं को पुस्तक रूप में लाने का श्रेय रामचंद्र शुक्ल को है, जिन्होंने पंडित केदारनाथ पाठक की प्रेरणा से सन् 1911 में 'कुसुम संग्रह' शीर्षक से उनकी रचनाओं का संकलन-संपादन किया। अपने 'संपादकीय' में वह लिखते हैं, 'इस 'कुसुम संग्रह' में अधिकांशतः बंग भाषा के प्रसिद्ध ग्रंथकारों के रचे हुए गल्पों व समाज के खंडचित्रों के अनुवाद हैं, जिनमें उनके मनोभावों का बड़ी सूक्ष्मता से चित्रण किया गया है। इनके अतिरिक्त, कुछ उपयोगी प्रबंध भी हैं। इनके सृजनकर्म की विशेषताओं के बारे में कहा जा सकता है कि इनके गल्प बहुत सुंदर हैं। इनकी लेखन-शैली सरस और सरल है। इनके लेख सबके लिए पठनीय, रोचक और शिक्षाप्रद हैं, विशेष रूप से स्त्री-शिक्षा संबंधी लेख बहुत ही उत्तम हैं। इसमें ऐसी शिक्षाप्रद आख्यायिकाओं का समावेश है, जो स्त्रियों के उच्च आदर्श की शिक्षा देता है।'

बंगमहिला के रचना-संसार को देखें, तो इन्होंने छह मौलिक कहानियाँ लिखीं—'चंद्रदेव से मेरी बातें', 'कुंभ में छोटी बहू', 'दुलाईवाली', 'भाई-बहिन', 'हृदय-परीक्षा' तथा 'मन की दृढ़ता'। उनकी कहानियों में तत्कालीन जीवनगत यथार्थ, मानवीय संवेदना और स्त्री-जीवन की समस्याओं पर प्रकाश डाला गया है। उनकी कहानियाँ सहज जीवन की बोलती तस्वीरें हैं। उनकी भाषा की संप्रेषणीयता और अभिव्यक्ति-क्षमता अद्भुत थी।

बंगमहिला के रचना-कर्म को समग्रता में देखें, तो उनका अनुवादक रूप भी मौलिक लेखन जितना ही प्रभावित करता है। बाँग्ला की जिन रचनाओं ने उनके मर्म को छुआ और उनके जिन विचारों से वह गहरे प्रभावित हुईं, उनका अनुवाद उन्होंने किया।

बंगमहिला के समस्त रचना-संसार से गुजरते हुए यह कहा जा सकता है कि अपने जीवन के अंत तक उन्होंने जिस भी विधा में सृजन किया, वह उत्कृष्ट है। उन्होंने अपनी मौलिक सृजनात्मकता, चिंतन, कथ्य, शिल्प और भाषा से न केवल प्रभावित किया, वरन् नये गद्य-विन्यास से हमें परिचित भी कराया। यथार्थ के फलक पर कल्पना के रंग भरे। उन पर आधारित यह पुस्तक लेखक की बहुज्ञता, बौद्धिक गहराई एवं गहन चिंतन का पुष्ट प्रमाण है, जो अध्येताओं और शोधार्थियों के लिए निश्चय ही उपयोगी सिद्ध होगी।

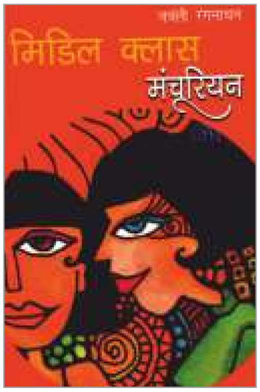

समीक्षक : **क्षमा शर्मा**

लेखक : **जयंती रंगनाथन**

प्रकाशक : राजपाल एंड संस, कश्मीरी गेट, दिल्ली

पृष्ठ : 142

मूल्य : रु. 265/-

मिडिल क्लास मंचूरियन

हाल ही में जयंती रंगनाथन का कहानी-संग्रह—'मिडिल क्लास मंचूरियन' राजपाल एंड संस से प्रकाशित हुआ है। इस कहानी-संग्रह के शीर्षक से जाहिर है और इसमें लिखी 'भूमिका' पढ़कर भी लगता है कि जयंती मिडिल क्लास को सेलिब्रेट करना चाहती हैं। आखिर करें भी क्यों नहीं! अब तक के विमर्शों में एक नैरेटिव गढ़ा गया है कि जो कहानी मेहनतकश वर्ग और वंचित वर्ग के ऊपर लिखी गई हो, बस वही महान होती है। मिडिल क्लास को तो तमाम रचनाओं में बस, लगातार कोसा ही गया है। आखिर ऐसा क्यों है? क्या मिडिल क्लास के लोग इनसान नहीं होते? उनकी समस्याएँ नहीं होतीं? दरअसल, वे ही हैं, जो तरह-तरह के टैक्स भरकर देश की आर्थिकी को मजबूत करते हैं। सरकार इनके वोट तो बटोरती है, मगर इनकी समस्याओं की तरफ से आँखें मूँदे रहती है। इसलिए अगर लेखिकाएँ इसमें पहल कर रही हैं तो यह अच्छी बात है। लिखना वही तो चाहिए, जिसे आप समझते हों, नजदीक से जानते हों। वरना तो रचनाएँ बेहद अविश्वसनीय बनती हैं, उनकी उम्र भी ज्यादा नहीं होती। जयंती वही कर रही हैं। 'भूमिका' में लिखती हैं, 'मंचूरियन सिर्फ एक घालमेल रेसिपी का नाम नहीं है। पूरी पीढ़ी की सोच है। यह पूरी तरह से मिडिल क्लास का मेटाफर है।'

पुस्तक में कुल दस कहानियाँ हैं। पहली कहानी 'चौथा मुसाफिर' की नायिका ऐसा असर छोड़ती है कि समझ में नहीं आता कि वह सचमुच है क्या? कोई जादूगरनी है, हत्यारिन है, मॉडर्न लड़की है। अंत तक अरूपा को कोई नहीं समझ पाता। वे लोग भी नहीं, जिनसे कुछ देर पहले तक वह बातें कर रही थी। इसमें अरूपा का कहा एक वाक्य जुबान पर चढ़ जाता है, "जब तक औरत अबला हो, तभी तक अच्छी लगती है।"

'काली टाई वाली औरत' कहानी में रूना ऐसी नायिका है, जो काले जादू और आधुनिकतम तकनीक मोबाइल के प्रभाव से मुठभेड़ करती है और काली टाई वाली स्त्री से जीतती है। रूना और उसकी माँ के बारे में लेखिका लिखती हैं, 'दोनों साथ कुछ इस तरह से रहती थीं, जैसे दो तलवारें आपस में भिड़ने को तैयार हों।'

तीसरी कहानी 'लाइन के बाहर' उन अनेक लड़कियों की दास्तान है, जो अपने परिवार द्वारा ही खदेड़ दी जाती हैं। पन्नू, असली नाम पावनी, ऐसी लड़की है, जिसे लड़के वाले एक बार रिजेक्ट कर उसकी बहन सुरंगिनी को शादी के लिए पसंद कर लेते हैं। और उसे बस जीवन की रेस से बाहर कर दिया जाता है। वह नौकरी तो करती नहीं है, इसलिए घर में जो भी काम होता है, चाहे दादी या भाई के बच्चों की देखभाल हो, करती है। भाई से कहा उसका यह वाक्य, "मेरी आँखों के सपनों ने कब से सच होना छोड़ दिया है", कितना मार्मिक है!

चौथी कहानी 'मिडिल क्लास मंचूरियन' का नायक मनीष कनाडा में रहता है। वैसे कभी माता, पिता या बहन की चिंता नहीं करता। लेकिन जैसे ही पिता की मृत्यु होती है, वह अपनी बेटी के साथ भारत दौड़ा चला आता है। कारण, पिता की कोठी को बेचना है। हालाँकि, इसमें वह कामयाब नहीं हो पाता है। ये लालची बच्चों के मन को उधेड़ती बहुत दमदार कहानी है। मनु ऐसा नायक है, जिसे खलनायक कहना उचित होगा। दरअसल, ऐसे लोग इन दिनों हर तरफ दिखाई देते हैं।

दरअसल, जयंती की कहानियों की स्त्रियाँ—अरूपा, रूना, तनु, किशोरवय की रोशनी, अल्पा, नैना, मंदिरा तरह-तरह के संघर्षों से जूझ रही स्त्रियाँ हैं। उनसे पाठक को कभी सहानुभूति होती है, तो कभी लगता है कि काश, ऐसा न हुआ होता। इस संग्रह में सारी कहानियाँ स्त्रियों को लेकर हों, ऐसा नहीं है। 'स्ट्रगलर' कहानी का केंद्रीय पात्र पवन एक रोल के इंतजार में मुंबई में जिंदगी का बड़ा हिस्सा निकाल देता है। 'जिंदगी से भागा हुआ' का लड़का किशोर, जिसे माता-पिता पढ़ने के लिए ऑस्ट्रेलिया भेजते हैं, लेकिन उसका वहाँ मन नहीं लगता। इस कहानी की बुनावट ऐसी है, जिसमें माता-पिता ये समझ सकते हैं कि बच्चों पर अपनी इच्छाएँ नहीं लादनी चाहिए। 'जब जागेंगे सपने' ऐसे परिवार की कहानी है, जो लौटकर अपने पुराने शहर जाना चाहता है, लेकिन वह शहर ही अब मौजूद नहीं होता है।

लेखिका की भाषा में इतनी रवानगी है कि कहीं बोर नहीं होने देती, इसलिए उनका यह कहानी-संग्रह पठनीय बन पड़ा है। इसके साथ ही, जयंती मध्य वर्ग की तमाम समस्याओं को बहुत मानवीय नजर से देखती हैं। मगर रचना में वह कहीं भी जजमेंटल नहीं होतीं, यही उनकी खासियत भी है।

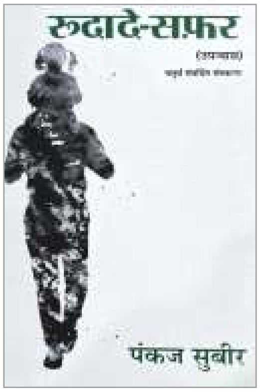

समीक्षक : **जनार्दन मिश्र**

लेखक : **पंकज सुबीर**

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सीहोर, मध्यप्रदेश

पृष्ठ : 264

मूल्य : रु. 300/-

रूदादे-सफ़र

(उपन्यास)

साहित्य की विविध विधाओं में एक दर्जन से ऊपर पुस्तकों के रचयिता अनेक संस्थाओं से सम्मानित, पुरस्कृत पंकज सुबीर का उपन्यास 'रूदादे-सफ़र' का चतुर्थ संवर्धित संस्करण शिवना प्रकाशन से छपकर आया है। 'रूदादे' शब्द का अर्थ है—रुदन, रोना, विलाप। इस उपन्यास में लेखक ने समाज की अनेक विसंगतियों पर विचार व्यक्त किए हैं। इस उपन्यास में लेखक ने समाज की अनेक समस्याओं को बड़ी सूक्ष्मता से एक-दूसरे के साथ जोड़ते हुए कथा रूप में पेश किया है।

डॉ. श्यामसुंदर दास उपन्यास में कथा-तत्व पर विशेष बल देते हैं, वहीं प्रेमचंद इसे मानव-चरित्र का चित्र मानते हुए कहते हैं कि उपन्यास को मानव-चरित्र का चित्र मात्र समझता हूँ। मानव-चरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्यों को खोलना ही उपन्यास का मूल तत्व है, जबकि आचार्य नंददुलारे वाजपेयी उपन्यास को आधुनिक युग का महाकाव्य मानते हैं। मेरी दृष्टि में, उपन्यास को लेकर प्रेमचंद की जो सोच है इस उपन्यास पर खरी उतरती है, साथ ही, कथा-तत्व का निर्वहन भी 'रूदादे सफ़र' को पठनीय बनाता है।

इस उपन्यास में कई पात्र हैं, मसलन डॉ. राम भार्गव, पुष्पा भार्गव, अर्चना, रेहाना, रुक्मणि, शोएब, शेखर, प्रवीण गर्ग, नेहा, डॉ. गोहिया, राखी आदि। उपन्यास का मूल केंद्र है—'कैडेवर', मतलब वह मृत शरीर या डेड-बॉडी, जो एनाटॉमी विभाग में उपलब्ध होती हैं, जिस पर भविष्य के डॉक्टर्स काम करते हैं। यह मृत शरीर कॉलेज को देहदान द्वारा प्राप्त होते हैं, बाकायदा शव-परीक्षण की प्रक्रिया से गुजरकर डिसेक्शन (विच्छेदन) कर मानव-शरीर के बारे में डॉक्टरी की पढ़ाई करने वाले विद्यार्थी सीखते हैं और मानव-शरीर की आंतरिक संरचना के बारे में जानकारी प्राप्त करते हैं।

डॉ. राम भार्गव एवं पुष्पा भार्गव की इकलौती पुत्री अर्चना गांधी मेडिकल कॉलेज के एनाटॉमी विभाग के डिसेक्शन-रूम में आए प्रथम वर्ष के विद्यार्थियों को 'कैडेवर' की प्रथम शपथ दिलवाती है। लगभग पैंतालीस वर्षीया अविवाहित अर्चना इस विभाग की विभागाध्यक्ष है। ऐसा नहीं कि वह विवाह प्रथा की विरोधी है। उसके जीवन में भी शेखर नाम का एक युवक आया था, पर घटना-क्रम ऐसा बना कि वह अर्चना के जीवन से दूर हो गया और अर्चना ने अविवाहित रहने का फैसला कर लिया; यद्यपि, उसके माता-पिता चाहते थे कि उनकी बेटी डॉक्टरी क्षेत्र में नाम कमाने के साथ-साथ गृहस्थ जीवन का भी सुख भोगे, पर उसके मन को कोई इतना भाया ही नहीं कि उसे जीवनसाथी के रूप में वरण करे।

डॉ. भार्गव और उनकी पत्नी पुष्पा भार्गव के विचारों में गहरा मतभेद है, खासकर पैसे को लेकर। पुष्पा भार्गव इतनी भौतिकवादी हैं कि अपने पति डॉ. भार्गव को बराबर राय-सलाह देती रहती हैं कि अन्य डॉक्टरों की तरह आप भी अपना क्लीनिक खोलकर शाम में प्रैक्टिस किया करो। गीत, संगीत, कविता में कुछ नहीं रखा है। ये सब बेकार के शौक हैं। जिस काम में आमदनी न हो, वह काम नहीं करना चाहिए, जबकि डॉ. भार्गव का मानना है कि ऐसी मानसिकता वाले लोगों को जिंदगी रुकने के लिए हाथ देती रह जाती है और पैसे कमाने की धुन में वे प्रेम, संगीत, गीत, कविता, किताबों, कहानियों, फ़िल्मों, यात्राओं, मूर्तियों, चित्रों को अनदेखा करते हुए एक दिन थक जाते हैं, गिर जाते हैं और मर जाते हैं।

जीवन के अंतिम दिनों में पुष्पा भार्गव अपने पति के प्रेम को महत्व देने लगी थी। डॉ. राम भार्गव पुष्पा की मौत के बाद अंदर से टूट गए थे। पुष्पा भार्गव के रहते जो डॉ. राम भार्गव दुनिया से लड़ जाते थे, बहस करते थे, तर्कों के साथ सामना करते थे, अपने आप से भी लड़ने के लिए उनके पास तर्क नहीं रह गये थे। वे बार-बार अर्चना से कहा करते थे कि बेटा (कई लोग प्यार से बेटी को बेटा कहते हैं।), किसी योग्य लड़के को देख-भाँपकर शादी कर लो, और अर्चना भी पिता की बात से राजी हो गई थी, पर 'कोई योग्य लड़का मिले तब तो विवाह की बात सोचे' अकसर वह अपने पिता से ऐसा कहा करती थी। अर्चना के माध्यम से उपन्यासकार ने प्रौढ़ कुमारियों के दर्द को मनोवैज्ञानिक भाषा में उकेरा है। अर्चना और रेहाना के बीच की गहरी दोस्ती का भाव भी दो संप्रदायों के बीच के मधुर रिश्तों को दर्शाता है।

दवा बनाने वाली कंपनियाँ कैसे सरकारी, गैर-सरकारी डॉक्टरों को अपनी कंपनी की दवाइयाँ प्रिस्क्राइब करने के लिए पैसे देती हैं, इस तथ्य का लेखक ने इस उपन्यास में खुलासा किया है। अपने व्यवहार और सामाजिक कार्य से अविवाहित कलेक्टर प्रवीण गर्ग कैसे अर्चना के दिल में जगह बनाने लगते हैं तथा डॉ. राम भार्गव अर्चना से गाँव जाने के बहाने बनाकर कैसे आदिवासी इलाके में चले जाते हैं और प्रवीण गर्ग के माध्यम से अर्चना के पास कैडेवर के रूप में उनका मृत शरीर लाया जाता है, इसका बड़ा ही मार्मिक चित्रण इस उपन्यास में हुआ है, पर इस पुस्तक में ऐसे अनेक अंग्रेजी शब्दों के प्रयोग भी किये गए हैं, जिसे हिंदी के पाठक नहीं समझ सकते हैं। इन शब्दों का हिंदी अर्थ पुस्तक के अंत में देना उचित होता। समग्रता में मूल्यांकन करें, तो इस उपन्यास में 'देहदान' के महत्व को बड़ी ही गंभीरता से मार्मिक शब्दों में रेखांकित किया गया है।

नये शेखर की जीवनी आगमन और प्रस्थान (उपन्यास)

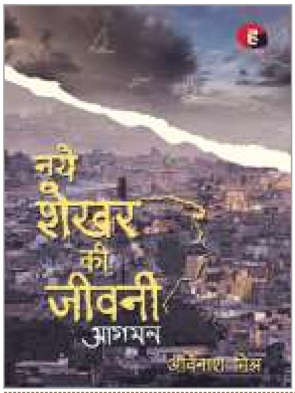

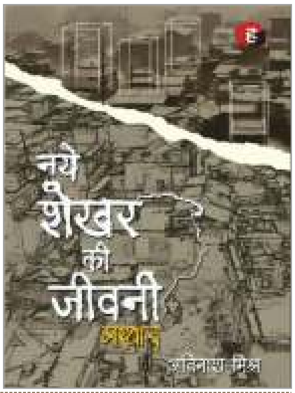

समीक्षक : **पवन करण**
लेखक : **अविनाश मिश्र**

प्रकाशक : हिन्द युग्म, नोएडा, उत्तर प्रदेश
पृष्ठ : 256, 240; *मूल्य* : रु. 299/-, रु. 299/-

पिछले कुछ दिनों से युवा कवि-गद्यकार अविनाश मिश्र के नवीनतम उपन्यास 'नये शेखर की जीवनी' के दोनों खंड, 'आगमन' और 'प्रस्थान' को पढ़ रहा था। इससे पहले उनका नवीनतम कविता-संग्रह 'वक़्त-ज़रूरत' पढ़ा तो उसकी पकड़ से छूटते जाते घुमाव में अपनी नजर को सप्रयत्न साधता रहा। मगर 'नये शेखर की जीवनी' ने तो बेध डाला। 'नये शेखर की जीवनी' के दोनों खंडों के केंद्र में कविता-कथा-कहानी नहीं है। इसके बीचों-बीच एक लेखक एक खरे मनुष्य के रूप में मौजूद है।

यहाँ इस बात का उल्लेख करना उचित ही होगा कि 'नये शेखर की जीवनी' के शेखर का अज्ञेय के शेखर से कोई साम्य नहीं है। यह एकदम अलग और नई पीढ़ी का नया शेखर है। अज्ञेय के शेखर से आगे का शेखर, 2034 का। 'शेखर : एक जीवनी' की तरह, इसके कथानक में शेखर के सान्निध्य में साँस लेती कोई स्त्री नहीं है। 'नये शेखर की जीवनी' में स्त्री और प्रेम कथानक को आगे बढ़ाने में सहारा नहीं बनते। इसमें प्रेम और स्त्री की संभावना और सक्रियता आती-जाती रहती है। इसे साहस ही कहा जाएगा कि इसके मध्य में बस शेखर और साहित्य है। रीना और रोली हैं, मगर चरित्र के रूप में वे अभी अविकसित हैं, मगर सहने-भोगने के स्तर पर उन्होंने 'विकास लाइन को छू लिया है।'

'नये शेखर की जीवनी' के दोनों खंडों को पढ़ने के दौरान मुझे लगता रहा कि इसे हिंदी के युवा लेखकों को जरूर पढ़ना चाहिए। ये पाठक से पहले लेखक के पढ़ने के लिए है। या दोनों के बीच होड़ करते हुए पढ़ने के लिए है। वरिष्ठ-कनिष्ठ सभी लेखकों को इसे अवश्य पढ़ना चाहिए कि कैसे अपनी असाधारण लेखकीय-क्षमता के बल पर एक युवा लेखक अपने वरिष्ठ लेखकों के जीवन को मात्र अध्ययन-आधारित वार्तालाप के जरिये घुसपैठ करके, उनके जिम्मेदारियों-परिवारों-नौकरियों के रास्ते उनके लेखकीय संघर्ष को पाठकों के समक्ष रख देता है और उस विन्यास में स्वतः उसका लेखक-जीवन भी सृजित हो रहा होता है।

नया शेखर सर्वनकारवादी नहीं है, अपितु सर्वस्वीकारवादी और सर्वसमीक्षावादी है। मगर स्वीकारने-अस्वीकारने की वक्रता उसकी अपनी और निजी है। किसके पास क्या है? इसकी उसे अच्छी पहचान है। वह आगरा से केदारनाथ सिंह से मिलने की ठानकर दिल्ली आए युवा लेखक की तरह पैर छूने की जगह लेखक के पैरों के नीचे की जमीन को परखने में यकीन रखता है। पैर पकड़कर खींच देने में उसका कोई यकीन नहीं। वह लेखक को गिराना नहीं चाहता है। लेखक को गिरता देखकर उपजने वाले अफसोस को प्रकट करना चाहता है। उसके हृदय में समझदारी और संवेदना है, चापलूसी और रहम नहीं। श्रद्धा के प्रश्नपत्र में तो नया शेखर वैसे भी अनुत्तीर्ण है।

शरारत शेखर के सुभाव में स्थायी भाव की तरह है, जो उसकी आँखों और बातों में ही नहीं, बल्कि लेखन में भी बसती और बहती है। लोग इसे शेखर के अवगुण के रूप में देख सकते हैं। मगर शेखर के शब्दकोश में शरारत का पर्याय समझदारी के रूप में मिलता है, जिसकी तीक्ष्णता के चलते वह पाठकों के लिए बहुत कुछ हासिल कर लेता है। जैसे कि बातचीत में बराबरी। यदि ऐसा नहीं होता तो 'नये शेखर की जीवनी' के दूसरे खंड में शामिल कवि विष्णु खरे से बातचीत इतनी स्वाभाविक नहीं होती। लगता है, दो विष्णु या दो शेखर या दो लेखक आमने-सामने बैठकर स्वयं से बात कर रहे हैं। विष्णु खरे होना आसान नहीं, मगर तब नया शेखर होना भी कहाँ आसान है! मुक्तिबोध होना आसान नहीं, मगर तब केदारनाथ सिंह होना इतना आसान क्यों है? इसका जवाब इस उपन्यास के दोनों खंडों में ढूँढ़ा जा सकता है।

इसे पढ़ने के दौरान लेखक-पाठक की दृष्टि का भेद मिट जाता है। 'नये शेखर की जीवनी' पाठक की संवेदना निर्मित करने का काम नहीं करती है। यह समझ इसे पढ़ने वाले लेखक-पाठक के पास पूर्व से होनी चाहिए। समझ के स्तर पर न यह नर्सरी का काम करती है, न प्राथमिक, न माध्यमिक का; इसकी शुरुआत सीधे स्नातक से होती है। शहर-दर-शहर बसता-उजड़ता नया शेखर यहीं से अपने लेखक होने की शुरुआत करता है। उसके पास बसने-उजड़ने को कुछ शहर हैं। मगर लेखक होने के लिए उसके पास जो मूल्यवान और एकमात्र तत्व है, वह है बेहद परिपक्व और बेधक दृष्टिबोध, जिसके चलते उसके पैर समय के साथ ही नहीं, समय के आगे, वर्ष 2034 में चलते हैं।

प्रश्न उठता है, क्या 'नया शेखर' रसकोलनिकोव, पावेल आर्गेनिच, प्येर बेजूखोव या अज्ञेय के शेखर की तरह हिंदी साहित्य का नया नायक है? या कोई पुराना? क्या इस नये शेखर की समीक्षा की जा सकती है? मगर 'नये शेखर की जीवनी' तो स्वयं में समीक्षा है। अपने समय की वास्तविक समीक्षा। मुझे एक पाठक के रूप में यह कहने में कोई संकोच नहीं है कि इसे पढ़ने में मैं जितना सफल हो सका, इस पर लिख पाने में मुझे उतनी सफलता नहीं मिल सकी। इसे समझने में कामयाब हुआ, लेकिन इसे समझा पाने में नाकामयाब। इसकी वास्तविक समीक्षा भी यही होगी कि इसके दोनों खंडों को पूरा पढ़ लिया जाए और मेरी तरह इसके तीसरे खंड के आने की प्रतीक्षा 'चंद्रकांता संतति' की तरह अति उत्सुकता से की जाए।

समीक्षक : **रमाशंकर सिंह**

लेखक : **राजीव भार्गव**

अनुवाद : **अभिषेक श्रीवास्तव**

प्रकाशक : राजकमल प्रकाशन प्रा.लि., दरियागंज, नई दिल्ली

पृष्ठ : 388

मूल्य : रु. 499/-

राष्ट्र और नैतिकता

नए भारत से उठते 100 सवाल

राजीव भार्गव भारत के मशहूर राजनीतिक सिद्धांतकार और अध्यापक हैं। उन्होंने चार दशक लंबे अपने अकादमिक जीवन में न केवल दुनिया के नामचीन शैक्षणिक संस्थानों से शिक्षा प्राप्त की है, बल्कि वहाँ अध्यापन और शोध किया है। इस प्रक्रिया में उन्होंने एक खास किस्म की विद्वत्ता अर्जित की है, जिसके तहत भारतीय जीवन-बोध को समझने के लिए राजनीतिक सिद्धांत और मूल्यों का सहारा लिया है। उन्होंने भारतीय संदर्भ में धर्मनिरपेक्षता को पुनर्परिभाषित किया है। इसके अलावा, उन्होंने विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित अपने लेखों में विभिन्न विषयों पर विचार व्यक्त किए हैं।

इस पुस्तक में संगृहीत लेख उनकी सार्वजनिक बुद्धिजीवी की भूमिका को विस्तार देते हैं। समीक्ष्य पुस्तक 'राष्ट्र और नैतिकता : नए भारत से उठते 100 सवाल' उनकी अंग्रेज़ी में प्रकाशित 'बिटवीन होप एंड डिस्पेयर' का हिंदी संस्करण है, जिसका अनुवाद प्रसिद्ध पत्रकार और अनुवादक अभिषेक श्रीवास्तव द्वारा किया गया है। यह किताब एक तरह से उनकी विचार वीथी से 100 रत्नों को पेश करती है और पाठक एक के बाद एक को लगातार देखता-पहचानता जाता है। बेहद सरल और पारदर्शी भाषा में लिखे गए ये लेख आशा और निराशा के बीच संतुलन बनाते हुए राष्ट्र की दिशा और नैतिकता पर विचार करते हैं। यह पुस्तक भारत के जटिल मुद्दों को समझने का एक आवश्यक दस्तावेज है।

प्रस्तुत पुस्तक दस खंडों में विभाजित है। 'खंड एक' संविधान को भारतीय प्रयोग की आत्मा बताता है, जो राष्ट्रीय संस्कृति में गर्व और संवाद को बढ़ावा देता है। 'खंड दो' लोकतंत्र के अमूल्य होने, नेतृत्व के गुण, सक्रिय नागरिकता, बैर की राजनीति और वैधता के संकट पर प्रकाश डालता है। 'खंड तीन' अधिकारों और मूल्यों पर केंद्रित है, जिसमें अल्पसंख्यक अधिकार, सहनशीलता और स्वतंत्र अभिव्यक्ति शामिल हैं। 'खंड चार' भारतीय सेक्युलरिज्म की चुनौतियों और गांधी की धार्मिक दृष्टि के पुनर्जनन की आवश्यकता को रेखांकित करता है। 'खंड पाँच' भाषा, संस्थाओं और बौद्धिक गुण की महत्ता पर विचार करता है। 'खंड छह' और 'सात' अन्याय, नस्लवाद और नैतिक पतन जैसे गंभीर मुद्दों को उठाते हैं, जो भारत की नैतिक स्थूलता और विचारधारात्मक हिंसा को दर्शाते हैं। 'खंड आठ' महामारी के दौरान सामाजिक पीड़ा और प्रवासी मजदूरों की दुर्दशा पर ध्यान देता है। 'खंड नौ' मनमानी सत्ता, पुलिस के आतंक और विभाजित समाज में प्रेम जैसे विषयों की पड़ताल करता है। 'खंड दस' हताशा के दौर में उम्मीद की किरणों की बात करता है।

हालाँकि, इसमें 100 लेख हैं, लेकिन इस किताब की केंद्रीय धुरी भारतीय संविधान है। भारत का संविधान स्वतंत्रता के साथ-साथ समानता के मूल्य को अंगीकार करता है, जो भारत के ऐतिहासिक संदर्भ में एक क्रांतिकारी प्रस्थान बिंदु था। उन्नीसवीं सदी तक जातिगत और लैंगिक पदानुक्रम भारतीय समाज में गहराई तक जड़ जमाए थे। संविधान ने समानता को अपनाकर इन असमानताओं को चुनौती दी। जाति-व्यवस्था, विशेष रूप से औपनिवेशिक काल में रूढ़ हो चुकी थी, जिसमें कथित शूद्र और अति शूद्र का बहिष्कार और अस्पृश्यता आम थी। समानता को संविधान का केंद्रीय तत्व बनाकर इसे ऐतिहासिक पदानुक्रम से अलगाव के रूप में देखा गया। इसने लैंगिक असमानता और इसे सही ठहराने वाले सिद्धांतों को भी चुनौती दी। संविधान की 'प्रस्तावना' में न्याय को भी महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है, जिसका अर्थ है सभी को निष्पक्ष और समान रूप से उनका दाय देना। न्याय को लोकतांत्रिक और शांतिपूर्ण विमर्श के माध्यम से स्थापित किया जाना है। लोकतंत्र केवल चुनावों तक सीमित नहीं, बल्कि यह राजनीतिक स्वतंत्रता और समानता को वास्तविक रूप देता है। नागरिकता का विचार समानता सुनिश्चित करता है कि कोई भी व्यक्ति पहले या दूसरे दर्जे का नागरिक न हो। सभी को बराबरी के साथ नागरिक कर्तव्य निभाने के लिए भौतिक कल्याण भी जरूरी है, जो राज्य नीति के निर्देशक सिद्धांतों में वर्णित है।

राजीव भार्गव बताते हैं कि भारत के संविधान ने परंपरागत निरंकुशता, वर्ण-तंत्र और औपनिवेशिक शोषण को खारिज किया, जिससे संवैधानिक नैतिकता में परंपरा की निरंतरता और अलगाव, दोनों दिखते हैं। आज भी भारत में समता, लोकतंत्र और स्वतंत्रता विरोधी परंपराएँ मौजूद हैं, जो आंतरिक खतरों का रूप लेती हैं। संवैधानिक मूल्यों के प्रति उदासीनता खतरनाक है। नागरिकों को इन मूल्यों के प्रति जागरूक रहना होगा, ताकि सामाजिक और राजनीतिक व्यवस्था न्यायपूर्ण बनी रहे। इस किताब में राजीव भार्गव सार्वजनिक जीवन में मौजूद सरल और जटिल, दोनों तरह के मुद्दों को उठाते हैं और फिर किसी सहज ज्ञानी की तरह उसे अपने पाठकों के लिए खोल देते हैं। सामान्य पाठकों और समाज अध्ययन के क्षेत्र में काम करने वाले विद्वानों के लिए यह एक आवश्यक किताब है।

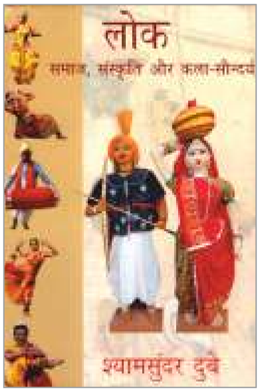

समीक्षक : **अजीत अवस्थी**

लेखक : **डॉ. श्यामसुंदर दुबे**

प्रकाशक : आर्यावर्त संस्कृति संस्थान, दयालपुर करावल नगर रोड, दिल्ली

पृष्ठ : 198

मूल्य : रु. 450/-

लोक समाज, संस्कृति और कला सौंदर्य

आज लोगों के बीच जिस तरह से सोशल मीडिया और मनोरंजन प्लेटफॉर्म्स की दखलंदाजी तेजी से बढ़ती जा रही है, इसने सबसे ज्यादा अगर किसी को क्षति पहुँचाई है या कहें कि हमारे सामाजिक जीवन से किसी को सबसे अधिक बेदखल किया है तो वह हमारा साहित्य ही है। लगातार बढ़ती पठनीयता के इस संकट के समय जब उपन्यास या फिर मोटिवेशनल किताबों को ही पाठक प्राप्त हो रहे हैं, ऐसे समय में लोक पर भी बहुत कुछ लिखा जा रहा है। फिर भी लोक के विस्तृत आयामों पर लिखा जाना विरल ही है। समीक्ष्य किताब में लोक, समाज, संस्कृति और कला सौंदर्य में लोकजीवन से जुड़े मिथकों, गीतों, कहावतों के आसरे लोक पर जो लिखा है, वह केवल सर्वेक्षण का कार्य नहीं है, बल्कि वह लोक के अतरी-कोने और उसके विभिन्न आयामों की पड़ताल भी करता है।

किताब लोकसाहित्य के पुरोधा लोकविद् डॉ. श्यामसुंदर दुबे की रचना है। प्रस्तुत पुस्तक में उन्होंने तीन खंडों में चर्चा की है। उनमें पहला खंड है—लोक का समाज। और समाज के लिए उन्होंने कुछ नायाब विषय चुने हैं। उन नायाब विषयों में से लोक में महामारी का प्रकोप, लोक में भूत, संन्यासी और साधु, इन सब विषयों को देखकर यह लगता है कि जैसे लोक के समाज को एक अलग दृष्टि से इसमें देखा जा रहा है। लोक समाज का विवेचन तो प्रायः समाजशास्त्री लोग करते रहे हैं, लेकिन लेखन और साहित्य के स्तर पर अगर हम इसका विश्लेषण करना चाहें तो यह कहा जा सकता है कि डॉ. दुबे ने लोक के जिन तथ्यों को और आशयों को इस पुस्तक में समेटा है, वे आशय लगभग लोगों के विचार वृत्त में स्थान नहीं बना पाए। ऐसे ही पक्षों पर इस किताब पर विमर्श किया गया है। उदाहरण के लिए, लोक में भूत की धारणा को लिया जा सकता है। समाज में अभी भी भूत विषयक धारणाएँ प्रचलित हैं। इस तरह के तत्वों को व्यावहारिक दृष्टि से देखा गया है।

किताब के दूसरे खंड में लेखक ने और सूक्ष्म होते हुए लोक संस्कृति और लोक के जीवन को व्यक्त करने की चेष्टा की है। वे लोक संस्कृति को मानव-मूल्यों का खजाना मानते हैं। मानव-मूल्य की जो उत्पत्ति हुई है वह प्रकृति और मनुष्य के सहजात संस्कारों से हुई है। अर्थात मनुष्य ने जो करुणा, क्रोध, मैत्री आदि भाव प्राप्त किए हैं, उनमें प्रकृति की अनुकरणपरकता भी है। हमारा आदिम मनुष्य प्रकृति के साथ रहता था, इसलिए उसने प्रकृति के इन अनुभवों को अपने भीतर ढाला। लोक का पूरा ढाँचा मानव-मूल्य विनिर्मित है। चाहे वह धार्मिक आस्थाएँ हों, चाहे वह सामाजिक आस्थाएँ हों। इन सबमें मानव-मूल्य प्रकट होते हैं। यह मानव-मूल्य भाषा में भी प्रकट होते हैं। हम जिन कहावतों और मुहावरों का प्रयोग करते हैं, वे एक तरह से सामाजिक मूल्यों की छोटी-छोटी नटसेल्स हैं। इन नटसेल्स में मानव-मूल्य ही समाहित होते हैं।

लोक जीवन के सौंदर्य का प्रदर्शन कलाओं के माध्यम से होता है। कलाओं का माध्यम चाहे चित्रकला हो, संगीत कला हो, मूर्ति कला हो, काव्य कला हो या नृत्य कला हो। इन सबमें एक प्राकृतिक लय विद्यमान होती है। इसके अंतर की क्रियाएँ मनुष्य के भीतर प्रकृति की अंतरक्रियाओं से मिलकर ही प्रकट होती हैं। जैसे, लेखक ने नृत्य के विषय में कहा है कि हम नृत्य को देखें तो समुद्र के किनारे के समाज का नृत्य होगा तो वह उछाल मारता हुआ होगा। क्योंकि समुद्र का जल उछाल मारता है। अगर वह असम या पहाड़ी क्षेत्र का होगा तो ऊँचाई की ओर कूदता हुआ होगा। अगर वह गुजरात या राजस्थान के समतलों का होगा तो वह घूमता हुआ चक्करदार नृत्य होगा। इस तरह तीसरे खंड में लेखक ने लोक कलाओं के अंतरंग को इस पुस्तक में दिया है।

लेखक डॉ. दुबे ने अपने लंबे जीवन-अनुभवों के साथ ही श्रुति और स्मृति से हासिल विरासत को इस किताब में बड़ी खूबसूरती से गूँथा है। मांगलिक अवसरों पर गाए जाने वाले ऐसे अनेक लोकगीतों का प्रयोग इस पुस्तक में उन्होंने किया है, जो किसी समय हमारी परंपरा का अभिन्न अंग थे और अब धीरे-धीरे विलुप्ति के कगार पर हैं। हमारे रीति-रिवाज के बीच सुख भरे हास्य के लम्हे जिए जाते थे, उनका काफी विस्तार से चित्रण इस किताब में लेखक ने किया है। यह पुस्तक उनलोगों के लिए महत्वपूर्ण हो सकती है, जो लोक के अनुभवों को अपनी स्मृति में सँजोए हैं। उन्हें जैसे इसे पढ़कर अपनी स्मृतियों में लौटने का अनुभव प्राप्त होगा। अपनी शोधपरकता के बावजूद, इस किताब में भाषा का प्रयोग बेहद सहज है। यह किताब लोक जीवन का एक सशक्त दस्तावेज निश्चित रूप से है और लोक के पाठकों के लिए मूल्यवान भी।

ग्लोबल गाँव के देवता

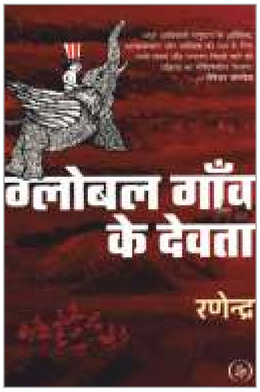

समीक्षक : **रमण कुमार सिंह**

लेखक : **रणेन्द्र**

प्रकाशक : राजकमल प्रा.लि., दरियागंज, नई दिल्ली

पृष्ठ : 152

मूल्य : रु. 250/-

'ग्लोबल गाँव के देवता' प्रकृति, जनजाति जीवन, समाज और उसके बहुविध संकट की पड़ताल करता है। प्राकृतिक संसाधनों के अंधाधुंध दोहन और आधुनिकता की आँधी में जनजातियों की परंपरा, रीति-रिवाज और उनके विश्वास ही नहीं, बल्कि उनकी अस्मिता का संकट भी उत्पन्न हो गया है। इन सबके कारण जो संकट गहराते जा रहे हैं, वे सिर्फ जनजातीय समाज तक ही सीमित नहीं रहने वाले, बल्कि पूरे देश और अन्य समाजों के लिए भी परेशानी पैदा करने वाले हैं।

इस उपन्यास का शीर्षक 'ग्लोबल गाँव के देवता' से ही स्पष्ट है कि इसके प्रभाव का परिधि स्थानीय से लेकर वैश्विक स्तर तक है। भले ही इस उपन्यास की कथावस्तु झारखंड के आदिवासी समाज पर केंद्रित है, लेकिन इसमें दुनियाभर के उन समुदायों के अस्तित्व संकट की चर्चा की गई है, जिन्हें मुख्य धारा का समाज निरंतर शोषित और प्रताड़ित करता रहा है। उपन्यास में ग्लोबल गाँव के देवता पदबंध का इस्तेमाल बहुराष्ट्रीय कंपनियों के लिए किया गया है, जो प्रकृति, पर्यावरण और उस पर आश्रित लोगों के जीवन की चिंता किए बगैर सिर्फ अपने लाभ पर ध्यान केंद्रित करती हैं। इस उपन्यास में भूमंडलीकरण के प्रभाव से लुप्त हो रही जनजातीय सभ्यता और संस्कृति की दर्दनाक दास्ताँ बयाँ की गई है। इस उपन्यास का मुख्य सूत्रधार एक स्कूल शिक्षक है। उसी ने यह पूरी कहानी बयाँ की है। स्कूल शिक्षक की नौकरी पाने वाले एक युवक की पहली पोस्टिंग शहर से दूर, पहाड़ के ऊपर जंगल-खदानों के बीच भौंरापाट में होती है। वह इस क्षेत्र में नौकरी करने जाना नहीं चाहता था, लेकिन वर्षों की बेरोजगारी ने उसे वहाँ जाने पर मजबूर किया। शुरू में उसे यह इलाका बेहद उबाऊ लगा, लेकिन धीरे-धीरे वहाँ के लोगों को जानने-समझने और उनके दुख-दर्द से रूबरू होने पर वह भी उनके संघर्ष में शामिल हो जाता है। असुर जनजातियों के बारे में आम धारणा को प्रकट करते हुए वह कहता है, 'असुरों के बारे में मेरी धारणा थी कि खूब लंबे-चौड़े, काले-कलूटे, भयानक दाँत-वाँत निकले हुए, माथे पर सींग-वींग निकले हुए लोग होंगे, लेकिन एक असुर 'लालचन' को जानकर सब उलट-पलट हो रहा था। बचपन की सारी कहानियाँ उलट रही थीं।'

इस उपन्यास की कथावस्तु जिस इलाके से संबंधित है, वह असुर जनजातियों के रहने का क्षेत्र है। असुर जनजाति ही इस उपन्यास के मुख्य पात्र हैं और उपन्यास में उन्हीं असुर जनजातियों की पीड़ा, यातना और संघर्ष को दर्ज किया गया है। असुर जनजाति जिस क्षेत्र में रहते हैं, वहाँ बॉक्साइट की खदानें हैं और इन खदानों से बॉक्साइट निकालने के लिए शिण्डाल्को और बेदांग जैसी बड़ी-बड़ी बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ पहुँच चुकी हैं। ये कंपनियाँ इन असुर जनजातियों की जमीन हथियाने के लिए तरह-तरह के हथकंडे अपनाती हैं, जिनमें उनके मददगार बनते हैं कुछ स्थानीय लोग, अधिकारी और राजनेता। ये कंपनियाँ लोगों को प्रलोभन देकर, डरा-धमकाकर अथवा मारकर उनकी जमीन पर कब्जा करने में सफल होते हैं। गोनू सिंह जैसे दबंग लोग, ठेकेदार, बहुराष्ट्रीय कंपनियों में काम करने वाले अधिकारी, पुलिस, राजनेता, पाखंडी बाबा आदि सभी तरह-तरह के इन असुर जनजातियों का शोषण करते हैं, इनकी बहू-बेटियों की इज्जतों से खिलवाड़ करते हैं। ये बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ खदान में काम करने के लिए मजदूरों के लिए इन्हीं पर निर्भर हैं, लेकिन उनके सुख-दुख से उन्हें कोई मतलब नहीं है। कंपनियाँ खदानों को खोदकर बड़े-बड़े गड्ढे तो कर देती हैं, लेकिन उन्हें भरती नहीं हैं। नतीजतन, उन गड्ढों में पानी भरने पर मच्छर पनपते हैं, जिनसे मलेरिया पनपते हैं और असमय उनकी जान चली जाती है। इस उपन्यास में असुर समुदाय की गाथा को पूरी प्रामाणिकता व संवेदनशीलता के साथ रचा गया है। उपन्यास में बताया गया है कि महिलाएँ इस समाज में सियानी कहलाती हैं, जनानी नहीं। 'जनानी' शब्द कहीं-न-कहीं जन्म देने की प्रक्रिया तक उन्हें संकुचित करता, जबकि 'सियानी' शब्द उनकी विशेष समझदारी-सयानेपन की ओर इंगित करता मालूम होता है। फिर भी, मजबूरीवश शोषित होना उनकी नियति बन गई थी।

उपन्यास में असुर समुदाय की अस्मिता के विभिन्न पक्षों को भी संवेदनशीलता के साथ उकेरा गया है। भेदभाव से मुक्त और समतावादी असुरों के सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन में हाट एवं अखड़ा जैसे सार्वजनिक केंद्र हैं, जहाँ खरीद-बिक्री, सामाजिक सम्मेलन, सगे संबंधियों से भेंट से लेकर गिले-शिकवे, अपनों का समाचार तथा शादियाँ तक तय होती हैं। अखड़ा में स्त्री-पुरुषों के समूह सरहुल, हरियरी, सोहराय, सड़सी-कुटासी आदि पर्व-त्योहारों पर जदुरा, झूमर नाचते हैं। लेखक ने उनके पिछड़ेपन के सूचक अंधविश्वास को भी उजागर किया है, जिनके कारण लोग परेशान हैं। जैसे, यहाँ मान्यता है कि धान को आदमी के खून में सानकर बिचड़ा डालने से फसल बहुत अच्छी होती है। खरीफ के सीजन में मुड़ीकटवा लोग इसीलिए सुनसान इलाके में घूमते रहते हैं। यहाँ देवी-देवताओं को खुश करने के लिए बलि चढ़ाने की पुरानी परंपरा भी है, जिसकी आड़ में मासूम आदिवासी बच्चियों के साथ कुकर्म

किया जाता है, फिर बलि के नाम पर मार दिया जाता है। कुल मिलाकर, यह असुर समुदाय के अनवरत जीवन-संघर्ष का दस्तावेज है। आग और धातु की खोज करने वाली, धातु पिघलाकर उसे आकार देने वाली कारीगर असुर जाति को सभ्यता, संस्कृति, मिथक और मनुष्यता सबने मारा है। देवराज इंद्र से लेकर ग्लोबल गाँव के व्यापारियों तक फैली शोषण की प्रक्रिया को रणेंद्र ने जिस तरह से उजागर किया है, वह असुरों की अपराजेय जिजीविषा और लालची लोगों की दुरभिसंधियों का हृदयग्राही दस्तावेज बन गया है। इस उपन्यास की मुख्य विषय-वस्तु यही है कि अब आदिवासियों की लड़ाई ऐसे दुश्मनों से है, जिनकी ताकत अपरिमित है, जो वैश्विक पहुँच रखते हैं और जिनके साथ लोकतांत्रिक शासन-प्रशासन खड़ी है।

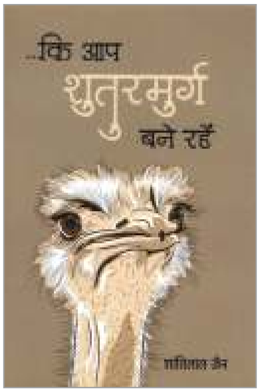

समीक्षक : **डॉ. रमेश तिवारी**

लेखक : **शांतिलाल जैन**

प्रकाशक : बोधि प्रकाशन, जयपुर

पृष्ठ : 160

मूल्य : रु. 200/-

...कि आप शुतुरमुर्ग बने रहें

शांतिलाल जैन हमारे समय के प्रमुख और गंभीर व्यंग्यकार हैं। '...कि आप शुतुरमुर्ग बने रहें' इनका अद्यतन व्यंग्य-संग्रह है। बोधि प्रकाशन, जयपुर द्वारा इसका प्रकाशन किया गया है। इस संग्रह की शीर्षक व्यंग्य रचना है—'...कि आप शुतुरमुर्ग बने रहें'। संकट के समय में संचार माध्यमों की भूमिका पर इस रचना में संजीदगी के साथ सवाल उठाया गया है। रचना के एक दृश्य में लेखक लिखता है, 'चैनलों पर मंजर निरंतर भयावह होते जा रहे थे, अस्पताल में पलंग खाली नहीं है, एम्बुलेंस की कतार लगी है, ऑक्सीजन खत्म हो रही है, चिताएँ धधक रही हैं, सजी हुई अर्थियाँ जलाए जाने के लिए अपनी बारी की प्रतीक्षा कर रही हैं। परिजन दर-दर भटक रहे हैं। मेरे एक हाथ में कलम है, दूसरे में रिमोट है और रेत में सिर घुसाए रखने का विकल्प है।' मृत्यु और उसके बाद का ऐसा भयावह मंजर कोरोना काल के अधिकांश लोगों की जिंदगी का हिस्सा बन गया था। लेखक इस त्रासद स्थिति को ध्यान में रखकर उस दौरान जो भी गलतियाँ हुईं, चाहे वो नीतिगत, चरित्रगत, प्रवृत्तिगत ही क्यों न हो, उन सब पर लेखक ने अपने व्यंग्य-बाण चलाए हैं। हममें से बहुत-से लोग ऐसे थे, जो लिखने के समय में शुतुरमुर्ग बने रहने को ही बेहतर समझ रहे थे। लेखक इसी विसंगति को इस रचना का विषय बनाता है।

आज की तारीख में ईमानदारी मात्र प्रदर्शन का विषय होकर रह गई है। जीवन में कोई इसे अपनाने को तैयार नहीं है, ईमानदारी के मार्ग पर चलने के जोखिम भी बहुत अधिक बढ़ गए हैं। लेखक ने इसी विषय पर 'ईमानदार होने की उलझन' शीर्षक से एक व्यंग्य रचना लिखी है। ईमानदारी की उलझन से बच निकलने के लिए इस रचना में खूब तर्क लेखक ने दिए हैं। "यार शांति, ऑनेस्टी एक बेस्ट पॉलिसी है, मगर तुम्हारे लिए है, ऐसा तो किसी ने नहीं कहा। अजीब तर्क है जो कहा गया है उससे कहीं ज्यादा अनकहा है। कहा गया है 'द बेस्ट पॉलिसी', अनकहा है 'फॉर अदर्स'। इसे एक साथ पढ़ो, यार, जो नीति वाक्य मंच से कहे जाते हैं, वे सुनने वालों के लिए हुआ करते हैं, वक्ताओं के लिए नहीं।" इस प्रकार से यह व्यंग्य जीवन में दोहरे आचरण को प्रतिष्ठित करने की व्यंजना द्वारा व्यंग्य प्रहार करता है। तभी वह इस वाकया में कुछ जोड़ते हुए तर्क देता है। "कहाँ लिखा है 'ऑनेस्टी इज द बेस्ट पॉलिसी फॉर एवर!' हमने तो ऐसा कहीं नहीं पढ़ा। ईमानदारी हर पल बदलने वाली है। जब तक आप आम नागरिक हैं, तब तक ये बेस्ट पॉलिसी है, जब अफसर हैं, तब नहीं है। जब तक आप मंच के ऊपर हैं तब तक है, नीचे उतर आएँ तब नहीं है। जब आप विपक्ष में हैं तब है, जब आप सत्ता में हैं, तब नहीं है। जब तक आप ग्राहक हैं तब तक है, जब आप विक्रेता हैं तब नहीं है। जब आप वादी के वकील हैं तो ईमानदार तकरीरें अलग हैं, जब आप प्रतिवादी के हैं तब की ईमानदार तकरीरें अलग हैं।" लेखक ने इस व्यंग्य में उपदेशक के रूप में अपने लिए तथा दूसरों के लिए अलग-अलग मानदंडों का वर्णन करते हुए मानवीय विसंगतियों पर प्रहार किया है। यह दोहरा मानदंड ही दोहरे जीवन-चरित्र की निशानी है। लेखक इस प्रकार के दोहरे चरित्र वालों पर बहुत सूक्ष्म दृष्टि बनाए रखता है और कहीं कुछ भी गलत देखते ही अपनी रचना में पिरोकर पाठकों के समक्ष परोस देता है।

इन रचनाओं में हम आम बोलचाल के साथ अंग्रेजी के शब्दों का सहजतापूर्वक इस्तेमाल देखते हैं। हालाँकि, अंग्रेजी शब्दों के अधिक प्रयोग मुझे चावल में कंकड़ की तरह खटकते हैं, किंतु लेखक की दृष्टि से यदि विचार किया जाए तो अंग्रेजी शब्दों के प्रयोग प्रसंग और पात्र के अनुकूल शब्दावली की सहजता और संप्रेषणीयता को बरकरार रखने के लिए ही किया गया है। इनकी भाषा पर विचार करते हुए वरिष्ठ व्यंग्यकार कैलाश मंडलेकर ने इस संग्रह की प्रस्तावनास्वरूप लिखा है, 'उनके पास भाषा का वह ताजा और टटका मुहावरा है, जो व्यंजक भी है और असरकारक भी। यह नई हिंदी है, जो शांतिलाल लिख रहे हैं। व्यंग्य यदि सचमुच अक्षर युद्ध है तो शांतिलाल इस हरावल दस्ते के सबसे मजबूत सिपाही हैं। हिंदी व्यंग्य में उनकी उपस्थिति धमाकेदार न सही, एक जिम्मेदार और आश्वस्तिपरक रचनाकार के तौर पर अवश्य स्वीकारी जानी चाहिए।' संग्रह की रचनाएँ पाठकों पर अपना दीर्घजीवी प्रभाव डालने में सफल हैं। लेखक से हमें भविष्य में भी अनेक बेहतरीन रचनाओं की उम्मीद है।

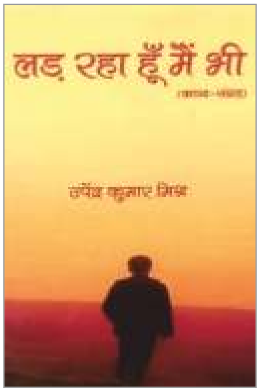

लड़ रहा हूँ मैं भी
(काव्य-संग्रह)

समीक्षक : **विजय कुमार तिवारी**
संपादक : **उपेंद्र कुमार मिश्र**
प्रकाशक : हंस प्रकाशन, नई दिल्ली
पृष्ठ : 118
मूल्य : रु. 395/-

कवि उपेंद्र कुमार मिश्र का काव्य-संग्रह 'लड़ रहा हूँ मैं भी' का यह शीर्षक उनके संघर्ष और जुझारूपन की ओर संकेत करता है। वही क्यों, इस संसार में सभी लड़ रहे हैं। उन्होंने भी दूसरों के संघर्ष को, दूसरों की लड़ाई को माना है, वरना लिख देते, लड़ रहा हूँ मैं ही। यह स्वीकृति, उनका सामंजस्य और उनकी दूरदृष्टि दिखाती है।

कवि ने कविता की अपनी सृजन-प्रक्रिया को 'अपनी बात' में समझाने का प्रयास किया है। पाठकों को चाहिए कि उनकी कविताओं को पढ़ने से पहले इस 'भूमिका' को अवश्य पढ़ लें। इससे उन्हें उनके काव्य को समझने में मदद मिलेगी।

इस संग्रह में उनकी 54 कविताएँ संगृहीत हैं, जिनकी भाव-भूमि सहज भी है और जटिल भी। उनकी कविताओं में गंभीरता है, दार्शनिकता है और सहजता के साथ यथार्थ भी दिखाई देता है। उनके पास शब्द-सामर्थ्य है, अभिव्यक्ति के लिए पर्याप्त अनुभव है और सच बयान करने का साहस भी है। वे टकराते हैं, चुनौतियाँ स्वीकार करते हैं और लड़ते रहने की घोषणा करते हैं।

'झूठी है माँ' और 'माताओ! माफ करना' जैसी कविताओं में कवि की गहरी समझ दिखाई देती है। पंक्तियाँ देखिए—माताओ!/माफ करना/आपकी कोख/मजदूर पैदा नहीं करती/उन्हें मजदूर बना देते हैं/नीति-नियंता। 'अभाव का आनंद' कविता अपनेपन की गरमाहट का रहस्य और रिश्तों में उभर आए नाना विमर्श समझा देती है। 'प्रश्न जिंदा रखिए' और 'मैंने पूछ ही लिया सूरज से' जैसी कविताओं में उनका गहरा जीवन-दर्शन छिपा हुआ है।

'दिल्ली ही देश है' कविता हास्य व व्यंग्य से भरी, सच्चाई की कविता है। मौलिकता को लेकर 'मौलिकता' कविता के प्रश्न झकझोरते हैं और वह दूर तक नाना उदाहरणों से वस्तुस्थिति समझाता है। 'बुद्धिजीवी' कविता बुद्धिजीवी की परिभाषा करती है और उसके खतरे बताती है। 'उम्मीद', 'संबंध', 'कोहरा, बादल और सूरज' तथा 'अटल इरादे' जैसी कविताएँ हमारे सामाजिक जीवन के विमर्श, संघर्षों, वेदनाओं-संवेदनाओं की स्थितियाँ दिखाती हैं। इनमें जटिलताएँ हैं, दुरूह स्थितियाँ हैं और कवि उनमें सहजता, सहमति और उजाले को तलाशता है।

'एक दिन ऐसे ही' या 'संवेदना' जैसी कविताओं में वह इन्हें खोज निकालता है और ऐसी मार्मिक कविताएँ पाठकों तक पहुँचा पाने में सफल होता है। उनके पास संवेदनाओं से भरे बिंब हैं—बरसात में चू रही झोपड़ी में सीने से चिपकाए बच्चे के साथ माँ की पीड़ा, गर्मी में काम पर जाने की मजदूर की विवशताएँ, पूस की ठंड में जीना, जूठन खाने का दुख और गरीबी में जीने की लाचारी—कवि बहुत कुछ अनुभव करता है। 'व्यवस्था' कविता में वह व्यवस्था और सत्ता के बारे में बतलाता है और परिभाषित करता है। 'असहाय' व 'अदृश्य शत्रु' जैसी कविताओं में कोरोना काल की असहाय स्थितियों का सटीक और मार्मिक चित्रण हुआ है और कवि हौसले के साथ-साथ जीने की बात करता है। 'दूसरे का चश्मा' में कवि दूसरे के चश्मे से देखने की आदत को नकारता है और अपनी दृष्टि से देखने की पुरजोर सलाह देता है। 'व्यापारिक संवेदना' कविता का संदेश यही है कि उसका संबंध मानवीय संवेदना से नहीं होता। 'कभी चीखा भी करो' हमारे भीतर की भाव-संवेदनाओं को जगाती हुई कविता है, जिसमें वह कभी चीखने, कभी रोने, प्रेम महसूस करने, कभी हार जाने, कभी हँसने और कभी प्रतिरोध करने की सलाह देता है। 'फिर अँधेरा छा गया' कविता में वह स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद भी देश में उजाला, खुशी या विकास नहीं देख पाता। वह नाना बिंब-प्रसंगों में अपनी पीड़ा व्यक्त करता है।

'जीवित लोगों का चुप रहना' कवि की दृष्टि में खतरनाक है, वह नाना बिंबों के सहारे अपनी बातें रखता है और हमारे पतन की ओर संकेत करता है। 'दहलीज' कविता स्त्री की पीड़ा की मार्मिक कविता है। कवि की पंक्तियाँ बताती हैं, आज वह बेटी के साथ खड़ी हुई है, उसने बेटी को कटने से बचा लिया है और उसकी बेटी उसी आकाश पर लिख रही है अपने हौसलों की गाथा।

उपेंद्र कुमार मिश्र की कविताओं में जीवन के संघर्ष हैं, उनका अनुभव है, व्यक्त करने के लिए पर्याप्त शब्दावली है और मार्मिक संवेदनाएँ हैं। इसके बिना कविता नहीं होती। 'जीवन-संघर्ष' इन्हीं भाव-संवेदनाओं की कविता है। उन्होंने इसे अपने तरीके से परिभाषित किया है। 'लड़ रहा हूँ मैं भी' के नाम पर ही कवि ने अपने संग्रह का नामकरण किया है। वह जीवन के अनेक मोर्चों पर लड़ रहा है, लड़ाई बाहर ही नहीं, भीतर भी है। यहाँ कवि ने एकल व भीड़ के मनोविज्ञान को, भीतर और बाहर के खतरनाक स्वरूप को समझने-समझाने की कोशिश की है।

इस तरह, देखा जाए तो मिश्र जी की सहज शैली है, अभिव्यक्ति के लिए सहज भाषा है, परंतु उनका चिंतन गंभीर है और उन्होंने गहरे अनुभव को आधार बनाया है अपनी कविताओं का। सचमुच उन्होंने कोई लड़ाई छेड़ रखी है और उनका संघर्ष भीतर-बाहर सर्वत्र व्याप्त है। बावजूद इसके, वह कोई नारा नहीं देते, बल्कि पाठकों को जीवन का यथार्थ दिखाते हैं। उनकी कविताएँ आज के कोलाहल भरे संसार में सहजता से अपनी जगह बना रही हैं और सबका ध्यान खींच रही हैं।

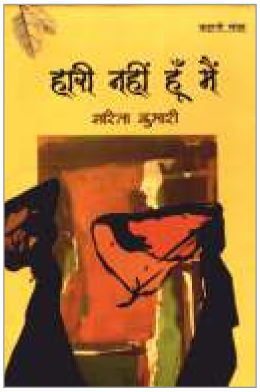

समीक्षक : **सविता लाल**

लेखिका : **सरिता कुमारी**

प्रकाशक : भावना प्रकाशन, दिल्ली

पृष्ठ : 144

मूल्य : रु. 400/-

हारी नहीं हूँ मैं

(कहानी-संग्रह)

लेखिका की पैनी दृष्टि सामाजिक उत्पीड़न को बखूबी अभिव्यक्त करने में सक्षम है। समाज में हो रही घरेलू हिंसा, नारी-उत्पीड़न एवं बच्चों का शोषण, हर स्तर पर लेखिका ने उनकी पीड़ा को स्वयं जिया है। तभी तो इतनी खूबसूरती से दिल को छू लेने वाली बात बड़ी सहजता से वे व्यक्त करती चलती हैं।

पुस्तक की पहली कहानी 'जीत' बाल शोषण के शिकार बालकों की पीड़ा को दर्शाने में सक्षम है। आज भोला या बहादुर जैसे बालक समाज में बाल शोषण का शिकार हो रहे हैं। शालिनी जैसी समाज सुधारिका को अपराधी (ढाबे वाला या ट्रक ड्राइवर) को सजा दिलवाने में अपनी जान की कीमत भी अदा करनी पड़ती है। पत्रकार जयंत कश्यप को कहानी के अंत में सक्रिय होते हुए अपराधी को सजा दिलवाने का प्रयास एक जिम्मेदार नागरिक होने का एहसास दिलाता है। जयंत का शालिनी के प्रति यह प्रेम भाव, कि तुम तो मन से संपूर्ण हो, अपाहिज नहीं, मैं मन से अपाहिज लोगों से शादी नहीं कर सकता, शालिनी को आत्मबल एवं जीने की प्रेरणा का आधार बनता है। यही नहीं, 'पगडंडी' कहानी के छोटू की पीड़ा हृदयविदारक है। कहाँ तो शहर जाकर नौकरी के मधुर-मीठे मनसूबे बाँधे छोटू तो कभी अपने घर वापिस ही न जा पाया। गया भी तब, जब वह बचपन से यौवन में कदम रख चुका था। ट्रक में बैठे हुए वह अपने गाँव की सड़क और गाँव को पहचान गया। अपनी मैया को ढूँढ़ते हुए वह मड़ई में जाकर, वहाँ बैठकर अपनी माँ को याद कर फूट-फूटकर रोता है। इसी चबूतरे पर बैठकर उसकी मैया कटोरी में तेल डालकर उसे तेल लगाती थी। वह उस कटोरी को माथे से लगाकर अपने थैले में रख लेता है।

'गंगिया' कहानी में एक हमलावर दाढ़ी वाले व्यक्ति का हृदय परिवर्तन गंगिया समान कोमल हृदय वाली माँ ही कर सकती थी। युवक का हृदय विदारक क्रंदन, चाची हमें बचा लो, गंगिया, जो कि अपने बीमार बेटे के लिए दवा लेकर जाती है, परंतु उसका यह कहना कि चाहे कोई कितनी भी गलती करे, परंतु किसी को मारने का हक हमको नहीं। एक माँ अपने सामने किसी भी बेटे को मरता हुआ नहीं देख सकती। 'डायरी के कुछ पृष्ठ' कहानी की शुभांगी किसी बीमारी से पीड़ित है। परंतु उसके पति असीत को उसकी बिलकुल भी चिंता नहीं। ताव में आकर शुभांगी का कहना—"हाँ, यही तो ख्याल रखते हैं कि लोगों के सामने कहते हो दूध पीयो, फल खाओ, पौष्टिक भोजन करो। बच्चों तक को मुश्किल से पूरा कर पाती हूँ, अपने लिए कहाँ से लाऊँ?" नारी की पीड़ा, उसके जीवन की त्रासदी को अत्यंत सहज तरीके से लेखिका ने दर्शाया है। 'हारी नहीं हूँ मैं' की नायिका जहाँ अपने को हारते हुए भी सँभाल लेती है, वहीं 'निर्वासन' कहानी की रानी फूलवती मौन समझौता कर लेती है।

'फिर भी' कहानी की नायिका मेधा के माध्यम से लेखिका ने भारतीय सनातन परंपरा को भी दर्शाने का प्रयास किया है, 'कल इसी नदी से उसने अपने मन की मुराद माँगी थी, जो पूरी हुई। जब उसकी मुराद पूरी हो गई तो इस नदी के पास आकर वह अपनी कृतज्ञता जता रही थी। चलते समय उसने नदी को छूकर प्रणाम किया। कितना सुकून मिला था।' नदी को प्रणाम कर अपनी मनोकामना पूर्ण होने की बात लेखिका का भारतीय परंपरा और संस्कारों में आस्था को दर्शाता है।

लेखिका की भाषा शैली की बात करें तो भाषा चित्रात्मकता लिये हुए है। संपूर्ण दृश्य नेत्रों के आगे साक्षात् साकार हो जाता है। 'फिर भी' कहानी का प्रारंभ इस प्रकार होता है—'सुबह की लाल किरणें बिखेरता सूरज नदी की तेज धारा में प्रतिबिंबित हो रहा था। सूरज, जो उससे कितनी दूर था, अभी जमीं पर पास में नजर आ रहा है।' सरल एवं संक्षिप्त वाक्य तथा सादगी से कही गई बात लेखिका की संप्रेषण शक्ति को दर्शाता है। अधिकांशत; पात्रानुकूल भाषा का प्रयोग उस चरित्र एवं अंचल का अधिरूप साकार एवं उभारकर रख देता है। जैसे 'जीत' कहानी का भोला कहता है, "अभी भोर कहाँ हुआ है। अभी तो अंधकार ही है।" 'समाधान' कहानी तो संपूर्ण आलंकारिक भाषा शैली से भरी है। 'शाम ने काली चादर ओढ़ ली थी।' चाँद की दूधिया रोशनी में गंगा व उसके किनारे की छटा और भी सुहावनी लग रही थी। ममता कालिया की 'दूसरा देवदास' कहानी में भी इसी मनोकामना की गाँठ की बात की गई है। हरिद्वार में मन में गंगा नदी से अपने मन की इच्छा पूर्ण होने की बात कही गई है। लेखिका सरिता कुमारी की भी गंगा नदी के प्रति आस्था एवं भारतीय सनातनी परंपराओं के प्रति रुझान यहाँ स्पष्ट दिखाई पड़ता है।

समग्रतः, लेखिका सरिता कुमारी को यदि मैं व्याख्यायित करूँ तो कह सकती हूँ कि वह एक अत्यंत संवेदनशील एवं भावुक हृदय की रचनाकार हैं। समाज का सर्वाधिक शोषित गरीब बालक वर्ग एवं महिला वर्ग की दयनीय स्थिति को उन्होंने अत्यंत करीब से देखा है। उनकी पीड़ा, मजबूरी को महसूस किया है। समाज के इस वर्ग के प्रति सहानुभूति के साथ-साथ समानुभूति के बिना इतनी भावपूर्ण कहानियों की रचना संभव न थी। ऐसा प्रतीत होता है कि लेखिका ने स्वयं भी उस दर्द और पीड़ा को जिया है। अत्यंत सहजता एवं सरलता से उस पीड़ा को लेखिका ने अपनी कलम के माध्यम से प्रस्तुत कहानी-संग्रह के रूप में साकार कर दिया है।

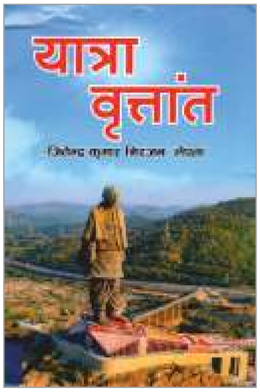

समीक्षक : **प्रदीप कुमार शुक्ला**

लेखक : **जितेन्द्र कुमार निरंजन 'भेंपता'**

प्रकाशक : भावना प्रकाशन, शाहदरा, नई दिल्ली

पृष्ठ : 436

मूल्य : रु. 470/-

यात्रा वृत्तांत

अगर ध्यान से देखा और समझा जाए तो हर इनसान का जीवन एक यात्रा या सफर ही तो है! एक ऐसा सफर, जहाँ वह अपने जीवन के अनेक पक्षों से, चाहे या न चाहे, रूबरू होता ही है, और उसे मिलता है एक मिला-जुला अनुभव, एक ज्ञान और खुद को समझने का अवसर।

इसी तरह से होता है किसी भी इनसान की जिंदगी में देश, प्रदेश, विदेश आदि स्थलों पर उसके द्वारा की जाने वाली यात्राएँ। छोटी हों या बड़ी, यात्राएँ तो हर दशा में यात्राएँ होती हैं और हर यात्रा देती है सीखने-समझने-जानने और कुछ पाने का अवसर।

सामान्यतः देखा जाए तो यात्राएँ तो जीवन में कोई भी कहीं भी करता ही रहता है, मगर उन यात्राओं के बारे में कोई-कोई ही खास होता है, जो अपनी की गई यात्राओं को शब्दों की माला में पिरोकर समाज के सम्मुख बहुत ही सीधे-सरल एवं भावात्मक तरीके से पेश कर पाता है। अपनी जगह-जगह की यात्राओं के बारे में संतुलित, किंतु रोचकता और सलीके से बताया है लेखक ने अपनी इस पुस्तक में।

लेखक ने प्रस्तुत पुस्तक—'यात्रा वृत्तांत' में बहुत ही सुंदर व आकर्षक तरीके से अपने यात्रा-प्रसंगों को प्रस्तुत किया है। इसमें उन्होंने जहाँ देशभर के अनेकानेक ऐतिहासिक, धार्मिक, सांस्कृतिक स्थानों के बारे में अच्छी जानकारी दी है, वहीं अनेकानेक हिल स्टेशनों, समुद्र के किनारे, नदियाँ, जलप्रपात, राष्ट्रीय उद्यानों, अभयारण्य और प्रकृति के अनोखे नजारों का बहुत ही रोचकता से वर्णन किया है।

इस पुस्तक की अन्य खासियत यह कही जा सकती है कि लेखक ने अपनी अनेकानेक यात्राओं में जो स्वयं देखा उसी का यहाँ वर्णन किया है। अपने उन यात्रा-वृत्तांतों को इस पुस्तक में अलग-अलग 24 अध्यायों में विभक्त करके लेखक ने एक अत्यंत सराहनीय कार्य किया है, जिससे कुल 436 पृष्ठों में प्रकाशित प्रस्तुत सामग्री का, कोई भी पाठक अपनी सुविधा और रुचि के अनुसार सहजता से और एक निरंतरता से इस यात्रा वृत्तांत का रसास्वाद ले सके।

इस पुस्तक में जम्मू-कश्मीर से लेकर सुदूर दक्षिण में कन्याकुमारी तक और अरुणाचल प्रदेश से गुजरात तक तकरीबन हरेक राज्य के खास-खास पर्यटन स्थलों का वर्णन एक जिल्द में उपलब्ध है। देश के पर्यटन स्थलों के साथ-ही-साथ, इस पुस्तक की खासियत है कि इसमें अन्य देशों, जैसे नेपाल, भूटान और म्यांमार जैसे स्थानों पर की गई यात्राओं का भी रोचक ब्योरा उपलब्ध है।

लेखक ने अपने इस यात्रा वृत्तांत में अनेक पर्यटन स्थलों का सिर्फ ऊपरी तौर पर रस्मअदायगी विवरण ही नहीं दिया, बल्कि उन स्थानों तक पहुँचने, वहाँ क्या-क्या देखने लायक है, वहाँ रहने तथा वहाँ की संस्कृति, साहित्य, लोकदर्शन का भी विस्तृत वर्णन दिया है। इस पुस्तक में जहाँ एक तरफ संबंधित पर्यटन स्थलों के बारे में शब्द-यात्रा करवायी गई है, वहीं संबंधित स्थल की रंगीन तस्वीरों के माध्यम से इस किताब में लेखक ने मानो चार चाँद ही लगा दिए हैं।

पुस्तक में लेखक द्वारा अनेक स्थलों, जैसे—गोवा, उत्तराखंड, राजस्थान, हिमाचल, जम्मू-कश्मीर, गंगासागर, महाराष्ट्र, गुजरात, प्रयागराज कुंभ दर्शन, उड़ीसा, झारखंड आदि अनेक स्थानों का बहुत ही बढ़िया ढंग से और सहज व जानकारीपूर्ण ब्यौरा दिया गया है। सभी अध्यायों में स्थान-स्थान की जो यात्राएँ लेखक ने की हैं उन स्थानों का केवल औपचारिक वर्णन ही पुस्तक का उद्देश्य नहीं दिखता, बल्कि इससे भी कहीं आगे बढ़कर इसकी रोचकता को बनाए रखते हुए किसी स्थान की संपूर्ण जानकारी के साथ-साथ, वहाँ का विस्तार से विवरण तथा वहाँ की कला, स्थापत्य, संस्कृति, लोकजीवन, पर्यटन स्थलों के बारे में कहाँ, कैसे, कब और क्या-क्या किसी भी स्थान विशेष की खासियत है यानी वहाँ की भरपूर झाँकी एकदम सामने अच्छे से पेश कर दी है। जैसे कि एक उदाहरण दूँगा कि एक स्थान पर बिहार के यात्रा वर्णन में लेखक का कहना कि बिहार के गौरव में ही भारत का गौरव सन्निहित है—नालंदा हो या वैशाली। अतीत हमारा गौरवशाली ।

वाकई, इस पुस्तक को पढ़ते हुए एक अलग ही किस्म के आनंद की प्राप्ति होती है, वह आनंद तो इस पूरी पुस्तक को पढ़कर ही बखान किया जा सकता है, यानी एक किस्म से 'गूंगे के गुड़' वाली बात कहें तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी।

आप इस पूरी पुस्तक के कलेवर को पढ़कर ही इस बात का अंदाज लगा सकते हैं। इस पुस्तक में शामिल सभी यात्रा प्रसंग रोचक जानकारी से लबरेज एवं हर किसी के लिए एकदम उपयोगी हैं। इतना ही नहीं, यह किताब इसी विधा यानी यात्रा या पर्यटन साहित्य पर लिखी अन्य पुस्तकों से अपने को अलग इस लिहाज से सिद्ध करने में सफल हुई है कि इसमें लेखक ने यात्रा पर जाने के पूर्व हर किसी के काम आने वाले 26 सुझाव भी दिए हैं। उनमें से मैं एक का उल्लेख यहाँ खासकर करना चाहूँगा कि—'नदी, झरने, पुल, समुद्र एवं चलते हुए सड़क पर सुरक्षित स्थान पर खड़े होकर ही फोटो खींचे-खिंचवाएँ। और सेल्फी लेते समय विशेष सावधानी रखें।'

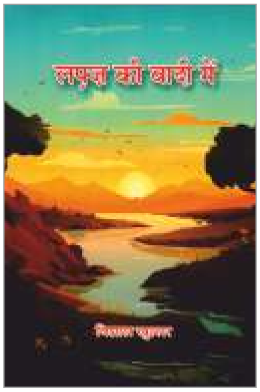

समीक्षक : **शहादत**

लेखक : **विशाल खुल्लर**

प्रकाशक : चेतना प्रकाशन, लुधियाना, पंजाब

पृष्ठ : 164

मूल्य : रु. 199/-

लफ़्ज़ की वादी में

(नज़्में)

'लफ़्ज़ की वादी में' संग्रह में संकलित नज़्में आजाद नज़्में हैं। आजाद नज़्मों का इतिहास न जाने कितना पुराना है। कहा जाता है कि सबसे पहले आजाद नज़्म (छंदमुक्त कविताएँ) फ्रांस में कही गई थी। हिंदुस्तानी सरज़मीं पर आजाद नज़्म का पहला शायर 'इस्माइल मेरठी' को माना जाता है।

इस संग्रह में शामिल नज़्मों में लेखक ने प्रकृति, प्रेम, परिवार, रिश्ते और इंसानी रूमानियत को आधार बनाया है। उदाहरण के लिए, संग्रह की दूसरी नज़्म 'मैं ख्वाब हूँ' में नज़्मकार खुद को ख्वाब में तब्दील कर कहता है कि ख्वाब ऐसी शय है, जो अपना रूप तो बदल लेते हैं, मगर मरते कभी नहीं। वह हमें हमेशा नजर आते रहते हैं, कभी नींद में तो कभी दिन के उजालों में। कहा जा सकता है कि इस तरह यह नज़्म ख्वाबों के अमर होने की निशानदेही करती है।

मगर 'मैं ख्वाब हूँ' नज़्म को पढ़ते हुए बरबस ही 'पाश' उपनाम से मशहूर पंजाबी के कवि अवतार सिंह संधू की कविता 'सबसे खतरनाक होता है सपनों का मर जाना' स्मरण हो आती है। अपनी इस कविता में पाश कहते हैं कि न तो एक मजदूर की मेहनत की लूट सबसे खतरनाक होती है और न ही पुलिस की मार सबसे खतरनाक होती है। कवि कहता है—

सबसे खतरनाक होता है/मुर्दा शांति से भर जाना/न होना तड़प का सब कुछ सहन कर जाना/ घर से निकलना काम पर/और काम से लौटकर घर आना/सबसे खतरनाक होता है/हमारे सपनों का मर जाना।

पाश की इस कविता के विपरीत, विशाल खुल्लर अपनी प्रस्तुत नज़्म में कहते हैं कि फ़क़त ख़्वाब ही हैं, जो कभी मरते नहीं है। इस संबंध में उनकी इस नज़्म की ये पंक्तियाँ देखिए—

फ़क़त ख्वाब ही हैं/जो मरते नहीं/रूह की तरह/
रहते हैं पिन्हाँ/ज़हन में, जिस्म।

संग्रह की कुछ नज़्में किसी रूमानी शायरी का अहसास कराती हैं। ऐसी शायरी, जो अपने महबूब से मिलने के लिए भी ख़्वाब का ही सहारा लेती है। कवि संग्रह की 'ख़्वाब-ए-विसाल' नज़्म में अपनी इन्हीं भावनाओं को व्यक्त करता है। इस नज़्म को पढ़ते हुए लगता है कि कवि का महबूब कहीं दूर खलाओं (अंतरिक्ष) में बसा है और वह उससे मिलने के लिए ख़्वाब देख रहा है। वह अपने आस-पास की हर उस चीज को महसूस करता है, जिसे केवल कवि, शायर या प्रेमी ही महसूस कर पाते हैं। हालाँकि, यह भी सच है कि इस संग्रह की सभी नज़्में ख़्वाब-ओ-ख़्याल और रूमानी अहसासात में रची-बसी नहीं है। संग्रह की कई कविताएँ बहुत परिपक्व और उन आधार स्तंभों पर आधारित हैं, जिन पर हमारा शुरुआती जीवन टिका होता है। इन स्तंभों में जो सबसे मजबूत और विश्वसनीय स्तंभ है, वह पिता नामक स्तंभ है। पिता के नाम लिखी अपनी नज़्म में विशाल खुल्लर ने उनकी तुलना ऐसे तपस्वी से की है, जो सुबह-सवेरे उठता है और दुकान पर जाकर बैठ जाता है। इससे यह भी अहसास होता है कि कवि की यह नज़्म एक मध्यवर्गीय परिवार में पिता की हैसियत का बयानिया बन गई है। घररूपी गाड़ी को चलाने में पिता की अहमियत को बताते हुए कवि अपनी नज़्म 'वालिद-ए-मोहतरम' में कहता है—

घर है सारा/और खेने वाला/भारी कश्ती/
मेरी हस्ती/मेरे घर में/एक तपस्वी।

'वालिद-ए-मोहतर' जैसी सशक्त कवि के साथ कवि ने हमारे समाज में महिलाओं की दुर्दशा पर भी कलम चलाई है। अपनी नज़्म 'चेहरा बे-चेहरा' में कवि एक अमेरिकी महिला की उस दर्दनाक दास्ताँ को बयान करता है, जिसका चेहरा उसके अपने पति ने ही गोली मारकर वीभत्स कर दिया था। उस हमले में उस महिला का चेहरा बिल्कुल बे-शक्ल हो गया था। बाद में डॉक्टरों ने 30 ऑपरेशन करके उसे नया चेहरा देने में कायमाबी हासिल की थी।

इस नज़्म को पढ़ते हुए यह भी पता चलता है कि देश चाहे अमेरिका हो या ऑस्ट्रेलिया, भारत हो या जापान, सभी जगह औरतों की स्थिति एक जैसी है। हर समाज में पुरुष वर्चस्ववाद हावी है, जो किसी भी कीमत पर औरत की आजादी को बर्दाश्त करना नहीं चाहता। अगर औरत किसी तरह अपनी आजादी हासिल करने की कोशिश भी करती है तो उसका वही हाल कर दिया जाता है, जो नज़्म में बयान की गई औरत का उसके पति ने किया था।

इसमें कोई संदेह नहीं कि विशाल खुल्लर अपने इस संग्रह द्वारा हमारे सामने एक अनोखी दुनिया लेकर प्रस्तुत हुए हैं। एक ऐसी दुनिया, जहाँ मानवीय पीड़ा, दुख, जिम्मेदारी और उनके साथ कुछ सुखद अहसास भी निवास करते हैं। मगर यह भी सच है कि 'लफ़्ज़ की वादी में' संग्रह में शामिल नज़्में नव-रचित रचनाएँ नहीं हैं। कवि की ये रचनाएँ उनके पहले संग्रहों, 'धुँध में अमाँ' और 'ख्वाब पलकों में' में प्रकाशित हो चुकी हैं। उन्होंने इन दोनों संग्रह से चुनिंदा नज़्में लेकर यह संग्रह तैयार किया है। फिर भी, इस संग्रह की नज़्में किसी ताजा बयार की तरह महसूस होती हैं और पाठक को एक नई ताजगी का अहसास कराने में कामयाब हुई हैं।

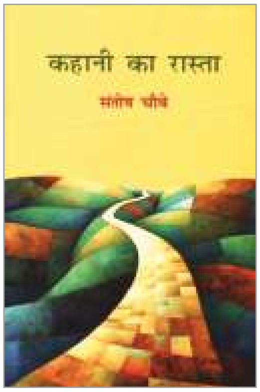

समीक्षक : **अशोक मिश्र**
लेखक : **संतोष चौबे**
प्रकाशक : आईसेक्ट पब्लिकेशन, अरेरा कॉलोनी, भोपाल
पृष्ठ : 176
मूल्य : रु. 350/-

कहानी का रास्ता
(आलोचना)

‘कहानी का रास्ता’ सुपरिचित कथाकार, कवि, चिंतक, आलोचक संतोष चौबे की हिंदी कहानी पर लिखी गई टिप्पणियों का संग्रह है। हिंदी कहानी पर लिखी ये टिप्पणियाँ कभी-कभार छपती रही हैं।

पुस्तक में समय-समय पर हिंदी कहानी के विभिन्न पहलुओं पर लिखे गए कुल दस आलोचनात्मक लेख शामिल हैं। लेखों के विषय इस प्रकार हैं—कहानी का रास्ता, आज की कहानी, कहानी कहाँ है, कहानी में प्रेम, कहानी में दृश्य विधान, शब्दों के पार अर्थ की तलाश, कथा भोपाल, कहानी में नएपन की तलाश, हिंदी कहानी के दो सौ बरस व विज्ञान कथाओं का अद्भुत संसार आदि। यहाँ पर एक प्रश्न उठता है कि संतोष चौबे जब एक स्थापित कथाकार हैं और उनके खाते में कई मानीखेज कहानियाँ दर्ज हैं, फिर वे आलोचना की ओर क्यों मुड़ते हैं? इस तथ्य का उत्तर भी पुस्तक के भीतर ही खुलकर आ जाता है। वे ‘आज की कहानी’ शीर्षक लेख में लिखते हैं—‘जिन दो चीजों ने आज के यथार्थ को मुश्किल बनाया है वे हैं सूचना और जानकारी का विस्फोट और जीवन की बढ़ी हुई या बढ़ती हुई गति। अचानक हमें लगने लगा है, जैसे जीवन को जानने-पहचानने की हमारी जो शक्तियाँ थीं, हमारी संवेदना थी, हमारी इंद्रियाँ थीं, वे अपर्याप्त-सी हो गईं—कि सूचना का, जानकारी का एक कुहासा-सा हमारे चारों ओर घिर आया है, एक वृत्त है, जिसके भीतर हम घिरे हुए हैं, वह घूम रहा है हमारे साथ-साथ, हमारे चारों ओर, और उसने, जैसे हमारी देख पाने की, सोचने-समझने की शक्ति को कुंद-सा कर दिया है। या कि तीव्र गति से चलने वाली रेलगाड़ी है, जो कि इतनी तेजी से हमारे सामने से गुजर रही है कि खिड़कियों के भीतर घट रहा यथार्थ हमें ठीक-ठीक दिख नहीं पाता। और अगर प्लेटफार्म भी गाड़ी के साथ-साथ तेजी से भाग रहा है तो फिर सब रुका हुआ है, स्टैटिक है, इतना कि हम जड़वत हो गए हैं, हस्तक्षेप नहीं कर पा रहे हैं।’ हिंदी कहानी पर उनका यह कथन इसलिए बहुत मानीखेज है कि वे कहानी लिखते हैं और समय की गति और आस-पास के समाज को अपनी पैनी व खुली सतर्क निगाहों से देखते रहते हैं। यही वजह हो सकती है कि वे आज का समय, समाज और उसका तेजी से बदलता यथार्थ पकड़ने की बात कर रहे हैं। कहानी को हम दूसरे शब्दों में, मनोविज्ञान और मनोभावों का चित्रण भी कह सकते हैं। व्यक्ति की पीड़ा भी कहानी है और उसका अकेलापन और संघर्ष भी कहानी है। कहानीकार इसी खोज में रहता है कि कैसे उसे ऐसा चरित्र या कथानक मिले, जहाँ पर कहानी की मुकम्मल इमारत को गढ़ा जा सके और वह कहानी कालजयी हो जाए। हिंदी कहानी आज भी सबसे ज्यादा पढ़ी जाती है। यही कारण है कि प्रेमचंद की कहानियाँ आज भी उतनी ही प्रासंगिक हैं, जितनी वे सौ साल पहले जब लिखी गई थीं, तब थीं।

अपनी लिखी गई कहानियों से इतर जब कोई कथाकार आलोचक की भूमिका में उतरता है तो वह बहुत ही बारीक ढंग से विधा की बारीकियों और खामियों से खुद भी जूझ चुका होता है। कहानी लिखने की प्रक्रिया और व्यक्ति के अनुभव विधा की अंतर्ध्वनियों की शिनाख्त करने का अवसर देते हैं। ऐसे में जब वह कहानी की आलोचना लिखता है तो उसकी लिखी आलोचना कहानी की अंतर्ध्वनियों को बहुत ही बारीकी से कह जाती है।

संग्रह का सबसे महत्वपूर्ण और पठनीय लेख ‘कहानी का रास्ता’ है, जिसमें वे अपने पिता वनमाली जी की कहानियों की तह में जाते हैं। यहाँ यह भी दिखता है कि संतोष चौबे किस लेखक से प्रभावित होकर कहानी लिखते हैं, जवाब है—वनमाली जी। लेख के अंत की दो पक्तियाँ पूरे लेख का सार हैं—‘मैं देखता हूँ कि मेरी कहानी का रास्ता उनकी कहानियों से होकर जाता है। उस पर चलते हुए वे अकसर साथ होते हैं। शायद मेरे भीतर!’ दो लेख बहुत ही शोधपरक हैं, जिसमें पहला लेख है—‘हिंदी कहानी के दो सौ बरस’। इस लेख में हिंदी कहानी की दो शताब्दी की कथा यात्रा पर बतौर आलोचक लेखक बहुत ही विस्तार से प्रकाश डालता है, जहाँ हिंदी की पहली कहानी जैसे विवाद पर भी दृष्टि डाली गई है। यहाँ वे हिंदी कहानी की संपूर्ण यात्रा का बहुत ही सार्थक ब्योरा प्रस्तुत करते हैं। इसी प्रकार एक अन्य लेख ‘विज्ञान कथाओं का अद्भुत संसार’ में हिंदी से लेकर मराठी, बाँग्ला, तमिल सहित भारतीय भाषाओं में विज्ञान-कथाओं के लेखन पर बहुत ही विस्तार से बात करते हैं। जाहिर है कि लेखक ने विज्ञान-कथाओं का खासा अध्ययन भी किया है। यह पुस्तक हिंदी कहानी विधा का अध्ययन करने वालों के लिए पथप्रदर्शक का काम करेगी। लेखक इस आलोचनात्मक कृति के लिए निश्चय ही बधाई का हकदार है।

भूल सुधार

‘पुस्तक संस्कृति’ पत्रिका के मई-जून, 2025 अंक में पृष्ठ 26 पर ‘हिंदी पत्रकारिता की वर्तमान दशा और दिशा’ शीर्षक लेख में भूलवश पंडित जुगल किशोर शुक्ल के स्थान पर आचार्य शिवपूजन सहाय की तस्वीर छप गई है। वस्तुतः पंडित जुगल किशोर शुक्ल की तस्वीर अब तक अप्राप्य है।

पर्यावरण जागरूकता एवं गुणवत्तापूर्ण शिक्षा की आवश्यकता पर बल

16 मई, 2025 को राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत और बिसलेरी इंटरनेशनल प्राइवेट लिमिटेड ने कॉस्टिट्यूशन क्लब ऑफ इंडिया में एक समझौता-ज्ञापन पर हस्ताक्षर किए, जो पर्यावरण जागरूकता एवं गुणवत्तापूर्ण शिक्षा पर केंद्रित सहयोग की शुरुआत को चिह्नित करता है। समझौता-ज्ञापन पर हस्ताक्षर निदेशक, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, श्री युवराज मलिक एवं मुख्य कार्यकारी अधिकारी, बिसलेरी इंटरनेशनल प्राइवेट लिमिटेड, श्री एंजेलो जॉर्ज ने संयुक्त रूप से किया। इस अवसर पर सीईई के संस्थापक निदेशक श्री कार्तिकेय साराभाई ने भी अपने विचार व्यक्त किए। इस पहल का उद्देश्य युवा पाठकों के बीच मूल्य-आधारित शिक्षा, जलवायु-साक्षरता और जिम्मेदार नागरिकता को बढ़ावा देना है। इस कार्यक्रम में स्कूली बच्चों के साथ एक प्रतीकात्मक एसडीजी शिक्षण सत्र भी शामिल था।

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत की गंगा पुस्तक परिक्रमा प्रारंभ

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत की गंगा पुस्तक परिक्रमा के पहले चरण की शुरुआत 05 जून, 2025 को मुजफ्फरनगर के गंगा घाट से हुई। इस अवसर पर माननीय जलशक्ति मंत्री श्री सी.आर. पाटील की उपस्थिति में 'नमामि गंगे' ध्वजारोहण कार्यक्रम संपन्न हुआ। यह परिक्रमा गंगा नदी के किनारे स्थित विभिन्न शहरों में साहित्यिक गतिविधियों और पुस्तक प्रदर्शनी के लिए आयोजित की जाती है। परिक्रमा के दौरान विभिन्न शहरों में पुस्तक प्रदर्शनी, विद्वान व्यक्तियों के संवाद कार्यक्रम, कविता पाठ और बच्चों की प्रतियोगिताएँ आयोजित की गईं। इस अवसर पर पीएम श्री राजकीय इंटर कॉलेज में श्री सुबोध शर्मा ने योग और माइंडफुलनेस सत्र का नेतृत्व किया, जिसके बाद बाल साहित्यकार श्री रजनीकांत शुक्ल ने गंगा की किंवदंतियों और ऐतिहासिक कहानियों को साझा किया। इस कार्यक्रम ने बच्चों में नदी के प्रति गहरा सम्मान पैदा किया। न्यास की ओर से शिव कला फाउंडेशन सोसायटी, अंबेडकर नगर, हरिद्वार में भी एक आकर्षक कार्यक्रम आयोजित किया गया। कहानीकार स्वाति गोयल ने गंगा की पौराणिक कथा से छात्रों को मंत्रमुग्ध कर दिया, साथ ही, नदी संरक्षण के बारे में जागरूकता फैलाई। बच्चों ने गंगा संरक्षण पर एक ड्राइंग गतिविधि में भी भाग लिया।

इसके बाद, गंगा पुस्तक परिक्रमा हरिद्वार पहुँची, जहाँ एनजीओ 'बाल कुंज' गोविंदपुर के सहयोग से कहानी और कविता सत्र आयोजित किया गया। बाल साहित्यकार नागेश पांडे और सृष्टि पांडे ने गंगा पर कहानियाँ और कविताएँ सुनाईं। गंगा संरक्षण पर बच्चों ने पोस्टर भी बनाए। प्रत्येक बच्चे को राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत की 'हर हाथ एक किताब' पहल के अंतर्गत एक किताब भी दी गई। छात्रों, शिक्षकों और अभिभावकों ने एनबीटी सचल पुस्तक प्रदर्शनी का भरपूर आनंद उठाया।

कोलंबिया के बोगोटा अंतरराष्ट्रीय पुस्तक मेले में राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत की भागीदारी

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत ने पहली बार कोलंबिया के बोगोटा अंतरराष्ट्रीय पुस्तक मेले (25 अप्रैल-11 मई 2025) में भागीदारी करते हुए भारत की पुस्तकों की एक प्रदर्शनी प्रदर्शित की। सामूहिक प्रदर्शनी ने सभी आयु वर्ग के आगंतुकों के बीच काफी रुचि दिखाई। मेले की निदेशक सुश्री एड्रियाना एंजेल ने स्टॉल का दौरा किया और न्यास की स्पेनिश पुस्तकों की सराहना की। लगभग 60,000 वर्ग मीटर में फैले इस मेले में पुस्तकों और भागीदारी की विभिन्न शैलियों और श्रेणियों पर 17 मंडप थे। भारत बोगोटा अंतरराष्ट्रीय पुस्तक मेले 2026 में अतिथि देश के रूप में भाग लेगा, जिसमें एनबीटी नोडल एजेंसी होगी।

अबूधाबी अंतरराष्ट्रीय पुस्तक मेले में राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत की भागीदारी

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत ने अबूधाबी अंतरराष्ट्रीय पुस्तक मेले (26 अप्रैल-05 मई, 2025) में भारत की पुस्तकों की प्रदर्शनी आयोजित की। अलग-अलग क्षेत्रों से आए आगंतुकों ने भारत की पुस्तकों में रुचि दिखाई। न्यास के उप निदेशक श्री मयंक सुरोलिया ने अबूधाबी के पाठकों को माननीय प्रधानमंत्री द्वारा लिखित 'एग्जाम वारियर्स' की प्रति भेंट की। आर्ट पब्लिशिंग से जुड़े स्टार्टअप 'रूफटॉप' के कार्तिक गग्गर की भी इस अवसर पर सहभागिता रही।

पुणे बाल पुस्तक मेला का आयोजन

बच्चों में पढ़ने का जुनून पैदा करने और उन्हें इतिहास, साहित्य, कला और संस्कृति की समृद्ध दुनिया से परिचित कराने के लिए 22 से 25 मई, 2025 तक गणेश कला क्रीड़ा केंद्र, स्वारगेट, पुणे में 'पुणे बाल पुस्तक मेला' का आयोजन किया गया। राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, पुणे पुस्तक महोत्सव, पुणे महानगरपालिका एवं 'संवाद' पुणे द्वारा संयुक्त रूप से यह आयोजन किया गया। कार्यक्रम का उद्घाटन महाराष्ट्र के शहरी विकास राज्य मंत्री, उच्च और तकनीकी शिक्षा मंत्री श्री चंद्रकांत पाटील और मराठी भाषा मंत्री श्री उदय सामंत द्वारा किया गया। राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत के स्टॉल पर भ्रमण के समय श्री चंद्रकांत पाटील और श्रीमती माधुरी मिसाल को राष्ट्रीय पुस्तक न्यास के अध्यक्ष प्रो. मिलिंद सुधाकर मराठे द्वारा पुस्तकें भेंट की गईं। इस अवसर पर पुणे पुस्तक महोत्सव के संयोजक श्री राजेश पाण्डेय की गरिमामयी उपस्थिति रही।

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत द्वारा बच्चों के लिए समर कैंप आयोजित

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत द्वारा वसंत कुंज स्थित मुख्यालय में बच्चों के लिए 21 से 31 मई, 2025 तक समर कैंप आयोजित किया गया। इसमें ग्रुप-ए में 5 से 8 साल के बच्चों के लिए तथा ग्रुप-बी में 9 से 14 साल के बच्चों के लिए विभिन्न प्रकार की गतिविधियाँ हुईं। इसमें हँसी, जिज्ञासा और खोज को सम्मिलित करते हुए कहानीकार स्वेता प्रसाद ने नन्हे-मुन्नों को मंत्रमुग्ध कर दिया। बच्चों के लिए ये पल मौज-मस्ती और सीख भरे रहे। इस कैंप में नीता जोशी ने जादुई कहानियाँ प्रस्तुत कीं तो आसान ड्राईंग ट्रिक्स और रंगीन कलाकृतियाँ बनाने से लेकर विवेक कुमार के साथ क्विज सत्र में भी बच्चों ने उत्साहपूर्वक भाग लिया। वसुधा और कुणाल ने म्युजिकल स्टोरीटेलिंग सत्र में कहानियों पर थिरकते हुए बच्चों का ज्ञानवर्धन किया और सोनल गोयल ने कैरिकेचर ड्राईंग सिखाई। कहानीकार जयश्री सेठी ने ग्रुप-बी के बच्चों को रोचक कहानियाँ सुनाईं तो फरमान की थियेटर वर्कशॉप में दमदार मंचीय उपस्थिति तथा पद्मप्रिया के साथ लयबद्ध धुनें व शिल्पा नारंग के साथ स्पेनिश का सरल परिचय बच्चों के लिए रचनात्मकता, अभिव्यक्ति और आनंद से भरपूर रहा। समर कैंप में पूर्व मुख्य चुनाव आयुक्त श्री सुशील चंद्रा और प्रयागराज उच्च न्यायालय के पूर्व मुख्य न्यायाधीश श्री संजय यादव ने भी उपस्थित होकर बच्चों का उत्साह बढ़ाया और न्यास के प्रयासों में गहरी रुचि दिखाते हुए इस पहल की सराहना की। संयुक्त निदेशक (प्रशासन एवं वित्त) श्री राकेश कुमार ने गणमान्य व्यक्तियों का स्वागत किया और उन्हें राष्ट्रीय पुस्तक न्यास के आगामी योजनाओं की जानकारी दी।

हैदराबाद पुस्तक प्रोन्नयन केंद्र में बच्चों के लिए समर कैंप

27 से 29 मई, 2025 तक राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत द्वारा हैदराबाद में बच्चों के लिए समर कैंप आयोजित किया गया। यह कैंप बच्चों के लिए रचनात्मकता और कल्पना का संगम रहा। अनिला ने एक आकर्षक पेपर क्राफ्ट कार्यशाला का नेतृत्व किया, जबकि साहित्य अकादेमी बाल साहित्य पुरस्कार विजेता और जादूगर चोक्कापु वेंकटरमण ने अपनी कहानी कहने

के जादू से बच्चों को मंत्रमुग्ध कर दिया। किताबें, कहानियाँ और मनोरंजक गतिविधियों के साथ गर्मियों की छुट्टियों में बच्चों ने खूब आनंद लिया। पद्मिनी रंगराजन द्वारा जादुई कठपुतली और थिएटर से लेकर जीवंत कहानी सुनाने और युवा प्रतिभागियों द्वारा नयनाभिराम कुचिपुड़ी प्रदर्शन तक, यह रचनात्मकता, संस्कृति और आनंद के तीन दिनों का एक आदर्श समापन था।

बेंगलुरू में बच्चों के लिए समर कैंप

29-31 मई, 2025 तक राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत द्वारा बेंगलुरू में एक समर कैंप आयोजित किया गया। इस समर कैंप में काव्या द्वारा कन्नड़ और अंग्रेजी में आकर्षक कथावाचन सत्र के पश्चात पेपर क्राफ्ट गतिविधि हुई। इसमें ओरिगामी कला के अंतर्गत साधारण कागज को रचनात्मक अभिव्यक्तियों में बदल दिया गया। शिविर का समापन एक जीवंत स्मृति खेल के साथ हुआ, जिसने टीम भावना का निर्माण किया। अगले दिन थिएटर, क्विज और ड्राईंग सत्र के अंतर्गत बच्चों की रचनात्मकता को प्रोत्साहन मिला।

कोच्चि पुस्तक प्रोन्नयन केंद्र, केरल में बच्चों के लिए समर कैंप

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत द्वारा कोच्चि पुस्तक प्रोन्नयन केंद्र, केरल में 07 एवं 09 जून, 2025 को दो दिवसीय समर कैंप का आयोजन किया गया। इसके अंतर्गत सोमी सोलोमन ने रोचक अंदाज में कहानी सुनाकर बच्चों का मन मोह लिया। इसमें इंडो-अफ्रीकन स्टोरीज (मलयालम) की कहानियाँ शामिल थीं। कलाकार अरविंद सुकुमार ने बच्चों को ओरिगामी पेपर आर्ट की आकर्षक दुनिया से परिचित कराया।

चेन्नई पुस्तक प्रोन्नयन केंद्र में बच्चों का तीन दिवसीय समर कैंप

25-27 मई, 2025 तक राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत द्वारा चेन्नई पुस्तक प्रोन्नयन केंद्र में तीन दिवसीय समर कैंप आयोजित किया गया। अपनी पहली कहानी गढ़ने के साथ ही बच्चों ने पपेट्री की जादुई दुनिया में गोते लगाए। उन्होंने अपने पात्रों को हस्तनिर्मित कठपुतलियों के रूप में जीवंत किया और गर्व व खुशी के साथ अपनी कहानियाँ सुनाईं। युवा बच्चों ने खुशी और रचनात्मकता के साथ कहानी कहने के अपने हुनर को खूब विकसित किया। चेन्नई की ओपन हाउस टीम द्वारा क्यूरेट किये गए इस अनूठे अनुभव में बच्चों ने बड़े उत्साह के साथ भाग लिया।

अहमदाबाद में गुजराती अनुवाद कार्यशाला का आयोजन

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत द्वारा 13 से 15 जून, 2025 तक तीन दिवसीय गुजराती अनुवाद कार्यशाला बोर्डरूम, राष्ट्रीय डिजाइन संस्थान, अहमदाबाद गुजरात में आयोजित की गई। प्रख्यात गुजराती लेखक और साहित्य अकादेमी बाल साहित्य पुरस्कार से सम्मानित श्री यशवंत मेहता ने मुख्य अतिथि के रूप में कार्यशाला का उद्घाटन किया और बच्चों के लिए अनूदित साहित्य की भूमिका पर प्रकाश डाला। इस अवसर पर मुख्य अतिथि एनआईडी के

निदेशक, डॉ. अशोक मंडल ने साहित्य और डिजाइनिंग की दुनिया के बीच के गहरे संबंधों को रेखांकित किया और बताया कि कैसे किताबें राष्ट्रीय जीवन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। राष्ट्रीय पुस्तक न्यास के मुख्य संपादक एवं संयुक्त निदेशक श्री कुमार विक्रम ने पढ़ने की संस्कृति पर बल देते हुए बताया कि अनुवाद कार्यशालाएँ पुस्तकों के माध्यम से राष्ट्रीय एकता को बढ़ावा देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। न्यास के संपादक (गुजराती) श्री भाग्येंद्र बहादुरभाई पटेल ने अतिथियों का स्वागत किया और न्यास के नए प्रकाशनों पर एक प्रस्तुति दी। इस कार्यशाला में 20 अनुवादकों द्वारा

100 पुस्तकें तैयार करने का कार्य किया गया। उद्घाटन सत्र में अहमदाबाद हवाई दुर्घटना में हुई दुखद मृत्यु की याद में एक मिनट का मौन भी रखा गया।

न्यास सभागार में योग कार्यशाला तथा योग दिवस का आयोजन

21 मई, 2025 को राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत के सभागार में 'योग एवं तनाव प्रबंधन' विषय पर कार्यशाला आयोजित की गई। भारतीय योग संस्थान के योगगुरु श्री आर.पी. त्रिपाठी एवं उनके शिष्य, योग आचार्य, श्री हर्षकुमार शुक्ला इस कार्यशाला के मुख्य वक्ता के रूप में आमंत्रित थे।

कार्यशाला में योग आचार्य श्री हर्षकुमार शुक्ला ने योग की उत्पत्ति और संचयन का विश्लेषण करते हुए आदियोगी शिव एवं आचार्य पतंजलि के योगदान पर प्रकाश डाला। योग के माध्यम से तनाव को दूर करने के लिए विभिन्न प्रकार की योग गतिविधियों से न्यासकर्मियों को अवगत कराते हुए उन्होंने कहा कि जीवन में योग के लिए प्रतिदिन मात्र कुछ समय देने से गंभीर बीमारियों से बचाव हो सकता है। उन्होंने कुछ विशेष योगाभ्यास के अंतर्गत-अंगुष्ठ योग, भ्रामरी, करतल एवं हास्य जैसे प्राणायाम का अभ्यास करवाया।

इस अवसर पर न्यास के मुख्य संपादक एवं संयुक्त निदेशक श्री कुमार विक्रम ने अपने स्वागत वक्तव्य में कहा कि 21 जून, 2015 को पहली बार अंतरराष्ट्रीय योग दिवस मनाने की परंपरा की शुरुआत हुई। इस वर्ष भारत सरकार द्वारा देशभर में 'योग दिवस' से संबंधित 100 दिनों के अभियान का आयोजन किया जा रहा है, जिसका एक हिस्सा यह कार्यशाला है।

न्यास के संयुक्त निदेशक, प्रशासन एवं वित्त, श्री राकेश कुमार ने धन्यवाद-ज्ञापन करते हुए कहा कि आज हम सभी लोग 'योग एवं तनाव प्रबंधन' विषय पर आयोजित कार्यशाला में एकत्र हुए हैं। योग भारत द्वारा विश्व को दिया गया एक दर्शन है, जिसके माध्यम से भारत ने विश्व को रास्ता दिखाया। इस कार्यक्रम का संचालन न्यास के अंग्रेजी भाषा के सहायक संपादक श्री द्विजेंद्र कुमार ने किया।

इसी क्रम में, अंतरराष्ट्रीय योग दिवस पर 20 जून, 2025 को भी न्यास सभागार में एक विशेष योग सत्र आयोजित किया गया। इस सत्र में शिवानंद योगा, वसंत कुंज, नई दिल्ली से आमंत्रित योगगुरु डॉ. पूरनचंद एवं सुश्री पारिता पटेल ने न्यासकर्मियों को विभिन्न प्रकार के योगासनों का अभ्यास करवाया। इस अवसर पर योगगुरु ने बताया कि मनुष्य का सबसे बड़ा धन है, स्वयं को खुश रखना। आहार समय पर और कम मात्रा में लें तो हम बीमारियों से बच सकते हैं। खाने और बोलने में जीभ पर नियंत्रण कर लेने से आप सुखी रहेंगे।

सत्र का समापन सामूहिक 'ओम' के उच्चारण के साथ हुआ, जिससे न्यासकर्मियों ने शांति और ऊर्जा का अनुभव किया।

पुस्तकें मिलीं

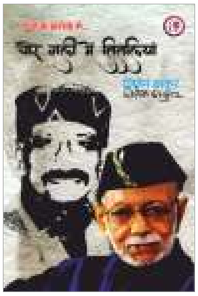

चोर गली में तितलियाँ

जितेन ठाकुर

प्रस्तुत पुस्तक में लेखक जितेन ठाकुर के संस्मरण संकलित हैं। वे अपनी यादों और अनुभव के खजाने में से कुछ नायाब तोहफे पाठकों के लिए लेकर आए हैं। पुस्तक में 22 पाठ दिये गए हैं, यथा—शहर जो धड़कता था, मोगरे से महकते दिन, एक टुकड़ा आसमान, मेरे अनाम दोस्त, किस्से दादी-नानी के, पिंजरे, घरौंदे आदि।

अद्विक पब्लिकेशन प्रा.लि., पटपड़गंज, दिल्ली

पृ. 120; रु. 200.00

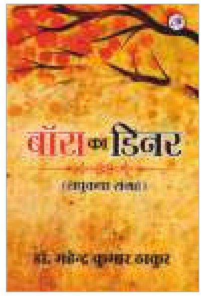

बॉस का डिनर

डॉ. महेन्द्र कुमार ठाकुर

यह पुस्तक लघुकथा संग्रह है, जिसमें लेखक द्वारा अब तक की लिखी हुई कुछ चुनिंदा लघुकथाएँ शामिल की गई हैं। लेखक ने अपनी लघुकथाओं में संवादों का समुचित प्रयोग करके उन्हें रोचक बनाने के अच्छे और प्रशंसनीय प्रयास किए हैं। संग्रह में कुल 101 कथाएँ हैं, यथा—अफसर, संस्कारों का सुख, अतिथि कौन, 21वीं सदा का एकलव्य, बूढ़ी आँखों का सपना, आशीर्वाद, विजयी मुस्कान, फास्ट बॉलर की खोज आदि।

अद्विक पब्लिकेशन प्रा.लि., पटपड़गंज, दिल्ली

पृ. 156; रु. 240.00

दिल्ली विश्वविद्यालय का स्मृति राग

प्रेम जनमेजय

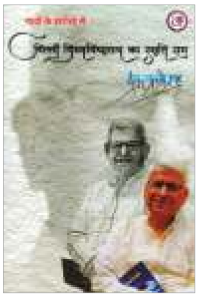

इस संस्मरणात्मक पुस्तक के माध्यम से लेखक ने हिंदी साहित्य के शब्द-शिल्पियों के जीवन के अभिज्ञ चित्र प्रस्तुत किए हैं। संस्मरणों की यह अभिव्यक्ति उनके जीवन के मनोरम परिप्रेक्ष्य को सामने लाती है और उनके व्यक्तित्व के अपरिचित पहलुओं से पाठकों को परिचित करवाती है। पुस्तक में 18 पाठ दिये गए हैं, यथा—अपनी राह की अन्वेषक : निर्मला जैन, साहित्य का श्रमिक : कमल किशोर गोयनका, उम्दा फल वाला वृक्ष : बलदेव वंशी, पहले कदम से साथ-साथ : दिविक रमेश, अशोक चक्रधर मेरे लिए एक बेहतरीन किताब आदि।

अद्विक पब्लिकेशन प्रा.लि., पटपड़गंज, दिल्ली

पृ. 228; रु. 350.00

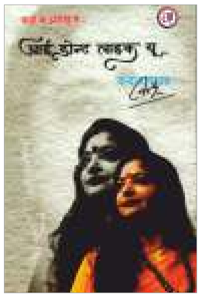

आई डोन्ट लाइक यू...

वंदना यादव

प्रस्तुत पुस्तक बाल मन की मानसिक जरूरतों, मुद्दों, बच्चों के आत्मविश्वास और आत्मसम्मान को बढ़ाने के साथ-साथ पैरेंटिंग के उत्कृष्ट सुझाव भी प्रस्तुत करती है। इस संस्मरण में लेखक ने बच्चों के साथ बिताये गए कीमती पलों को स्मृति-पटल से निकालकर पन्नों पर अंकित किया है। पुस्तक को 16 पाठों में विभाजित किया गया है।

अद्विक पब्लिकेशन प्रा.लि., पटपड़गंज, दिल्ली

पृ. 112; रु. 170.00

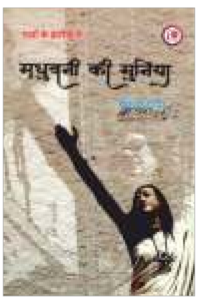

मधुबनी की मुनिया

विभा रानी

पुस्तक 'मधुबनी की मुनिया' में विभा रानी के मधुबनी के अपने जीवन और अनुभवों को साझा किया गया है। यह संस्मरण लेखक के जीवन के अनेक पहलुओं को प्रस्तुत करता है। पुस्तक में मधुबनी के लोगों के जीवन में होने वाले परिवर्तनों को भी दर्शाया गया है। लेखिका ने इस संस्मरण की संरचना को एक उपन्यास के रूप में सोचकर, कथा गढ़ने का तरीका अपनाया है।

अद्विक पब्लिकेशन प्रा.लि., पटपड़गंज, दिल्ली

पृ. 240; रु. 350.00

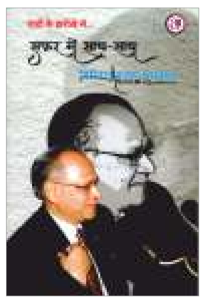

सफर में साथ-साथ

गिरिराजशरण अग्रवाल

पुस्तक में दिए संस्मरण लेखक के जीवन में घटने वाली विभिन्न घटनाओं के बिंब हैं। इनमें लेखक ने उन परिवारजनों, साथियों, सहकर्मियों और प्रेरकों को संस्मरणों का विषय बनाया है, जिनका अनुभव उन्होंने अपने जीवन में किया है। इस पुस्तक में 86 पाठ दिये गए हैं, जैसे—बचपन का स्कूल, कविता के बीज, मेरी पहली पुस्तक, बचपन में भविष्यवाणियाँ, चार पहियों की सवारी, पिता के संस्कार, विनम्रता के साधक को प्रणाम, व्यंग्य का मास्टर आदि।

अद्विक पब्लिकेशन प्रा.लि., पटपड़गंज, दिल्ली

पृ. 196; रु. 320.00

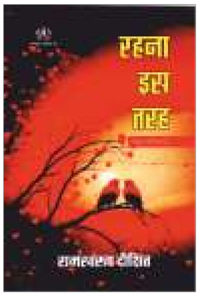

रहना इस तरह

(प्रेम कविताएँ)

रामस्वरूप दीक्षित

प्रस्तुत पुस्तक में लेखक ने लगभग 60 कविताओं का संकलन किया है, जिनके शीर्षक कुछ इस प्रकार हैं—सौंदर्य, इंतज़ार, तुम्हारा मन, तुम्हारी हँसी, प्रेम की तलाश, ये चेहरा, मौसम, तुम्हारा मुड़कर देखना, समय से पार, तुम्हारा इस तरह हँसना आदि। कविताओं की भाषा सरल, सहज एवं प्रवाहमयी है।

ज्ञानमुद्रा पब्लिकेशन, भोपाल, मध्यप्रदेश

पृ. 132; रु. 250.00

1857 के आस-पास की ज्ञात-अज्ञात वीरांगनाएँ

राजेश सेन

इस पुस्तक के माध्यम से लेखक ने सन् 1857 के दौरान उन वीरांगनाओं के कार्यों तथा बलिदान का वर्णन किया है, जिन्होंने बिना किसी स्वार्थ के अपना जीवन देश के लिए न्योछावर किया। पुस्तक में 90 ज्ञात-अज्ञात वीरांगनाओं के विषय में बताया गया है, जिनमें शामिल हैं—हैदरीबाई, रानी हिंडोरिया, रानी मानवती, असगरी बेगम, भीमा बाई होलकर, रानी रापुइलियानी, रानी शिरोमणि आदि।

ब्रज संस्कृति शोध संस्थान, मथुरा, उत्तर प्रदेश

पृ. 160; रु. 250.00

एहसास के जुगनू

डॉ. माला कपूर 'गौहर'

यह पुस्तक ग़ज़ल-संग्रह है। इसमें लेखक ने 108 ग़ज़लें शामिल की हैं, जिनमें से कुछ के विषय हैं—कुछ शिकायत ज़रूर हमसे है, ज़िंदगी इतनी रायगाँ क्यूँ हो, आईने को सँवार के देखो, अब अपनी मिसाल के रँग दे, जुनून-ए-इश्क़ दिखलाया तो होता, वक़्त के साथ बदला है मंजर, बैठे-बैठे जो गुनगुना बैठे आदि। यह ग़ज़ल-संग्रह पाठकों को अपनी ओर आकर्षित करेगा।

प्रतिभा प्रतिष्ठान, नई दिल्ली

पृ. 128; रु. 250.00

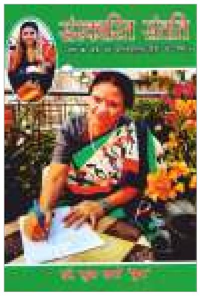

संस्कारित संतति

(माँ के पत्र माँ बनने वाली पुत्री के नाम)

डॉ. सुधा शर्मा 'पुष्प'

इस पुस्तक में माँ द्वारा पुत्री को संबोधित 26 पत्र दिये गए हैं। इन पत्रों में लेखिका ने पुत्री के विवाह के उपरांत ससुराल में जाने और वहाँ अपने उत्तरदायित्व निभाने से अपनी बात शुरू की है। पत्रों में लेखिका ने अपनी पुत्री को माँ बनने पर कौन-कौन से संस्कार गर्भ में पल रहे शिशु के शारीरिक और मानसिक विकास में सहायक होते हैं और जन्म के उपरांत कौन-से संस्कार कब और कैसे करने चाहिए, इस महत्वपूर्ण जानकारी को बहुत ही सरस ढंग से प्रस्तुत किया है। इनमें से कुछ पत्रों के शीर्षक इस प्रकार हैं—माँ होना, मन मस्तिष्क, लोरी, स्वयं आदर्श बनो, शिष्टाचार, समय नियोजन, स्वबोध, परीक्षा और समाजिकता आदि।

साहित्यभूमि, मोहन गार्डन, नई दिल्ली

पृ. 108; रु. 455.00

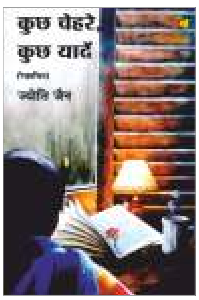

कुछ चेहरे कुछ यादें

ज्योति जैन

यह पुस्तक गद्य की एक महत्वपूर्ण विधा, रेखाचित्र में लिखी गई है। लेखक ने इस पुस्तक में 22 पाठ शामिल किए हैं। पाठकों को पुस्तक पढ़ने के पश्चात ऐसा प्रतीत होगा कि वे अपनी ही कहानी पढ़ रहे हैं। लेखक ने ऐसे विषयों का चयन किया है, जो एक साधारण व्यक्ति के जीवन से जुड़ते नजर आते हैं।

शिवना प्रकाशन, सीहोर, मध्यप्रदेश

पृ. 102; रु. 175.00

लोकतंत्र के वारिस

रामगोपाल भावुक

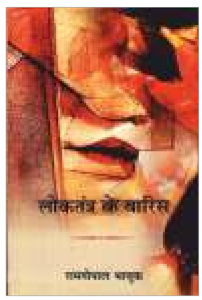

यह कृति सामाजिक, राजनैतिक पृष्ठभूमि पर आधारित औपन्यासिक दस्तावेज है। इसमें अमृता नामक पात्र के महत्त्वाकांक्षी राजनैतिक उदय से पुनरोदय तक की कहानी है। उपन्यास की भाषा अभिधात्मक एवं बोधगम्य है।

विकल्प प्रकाशन, सोनिया विहार, दिल्ली

पृ. 128; रु. 400.00

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास की द्विमासिक पत्रिका

पुस्तक संस्कृति

के सदस्य बनें

सदस्यता प्रपत्र

नाम : ______________________

पता : ______________________

जिला : __________ शहर __________ राज्य __________ पिन कोड __________

फोन : __________ ई-मेल : __________

मैं राशि रु. (अंतर्देशीय : 225/- रु.; अंतर्राष्ट्रीय : 1000/- रु.) __________ वार्षिक सदस्यता हेतु (बैंक ड्राफ्ट/नगद) __________ ड्राफ्ट संख्या __________ बैंक एवं शाखा द्वारा जारी __________ भेज रहा/रही हूँ (संलग्न)।

सदस्यता शुल्क बैंक ड्राफ्ट द्वारा (नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया के पक्ष में देय), सदस्यता प्रपत्र के साथ निम्नलिखित पते पर भेजें :

संपादक
पुस्तक संस्कृति
राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, 5 इंस्टीट्यूशनल एरिया, वसंत कुंज,
नई दिल्ली-110070
ई-मेल : editorpustaksanskriti@gmail.com
दूरभाष : 011-26707876

ऑनलाइन शुल्क भेजने का विवरण इस प्रकार है :

For	National Book Trust, India
Bank	Canara Bank
Branch	Vasant Kunj, New Delhi-110070
A/c No.	3159101000021
IFSC Code	CNRB0003159
MICR Code	110015187

शुल्क भेजने के पश्चात कृपया फोन अथवा पत्र द्वारा सूचना अवश्य दें।

सदस्यता के आवेदन हेतु इस सदस्यता प्रपत्र की प्रतिलिपि का उपयोग करें।

RNI NO. DELHIN / 2016 / 68219

मनोरंजन, ज्ञान और जिज्ञासा की अनूठी दुनिया!

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत के स्वाधीनता संग्राम पर उत्कृष्ट प्रकाशन

सुराज और स्वराज

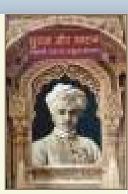

राष्ट्रवादी राजा का अमूल्य योगदान

एस.सी. मिश्रा

अनुवाद : **रत्नेश कुमार मिश्र**

महात्मा गांधी और जवाहरलाल नेहरू के नेतृत्व में हुए भारत के राष्ट्रीय आंदोलन के बारे में आजादी के बाद से बहुत सारा ऐतिहासिक लेखन सामने आया है। प्रस्तुत पुस्तक में उस काल का दस्तावेज पाठकों को जहाँ समृद्ध करता है वहीं जिज्ञासा को भी शांत करता है।

पृ. 108; रु. 190.00

झारखंड के भूले-बिसरे क्रांतिवीर

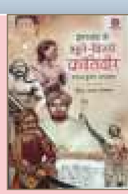

मनोज कुमार कपरदार

चित्र : **अलय घोषाल**

पुस्तक में झारखंड के ऐसे क्रांतिकारियों के बारे में सामग्री को एकत्रित किया गया है, जिन्हें भुला दिया गया था या जिनके बारे में लोगों को कम जानकारी है। झारखंड के इन क्रांतिवीरों ने अपने बलिदान से राष्ट्र को गौरवान्वित किया है। रघुनाथ महतो, चित्रजीत राय, बुधू भगत, बख्तर साय, सोबोन मुंडा, पोटो हो, शेख भिखारी, टिकैत उमराव सिंह समेत 25 महत्वपूर्ण भूले-बिसरे क्रांतिवीरों का उल्लेख किया गया है।

पृ. 132; रु. 100.00

अपने लिए जिए तो क्या जिए

(एक क्रांतिकारी की जीवन गाथा)

राजेंद्र नाथ बख्शी

स्व. शचींद्र नाथ बख्शी के जीवन के ज्ञात-अज्ञात तथ्यों को संकलित कर यह पुस्तक लिखी गई है। इसमें शचींद्र नाथ के तरुणाई से संघर्ष, आज़ादी की ललक, काकोरी कांड के बाद फरारी, घर की कुर्की के बाद गरीबी, मुकदमा-सज़ा, राजनीति, जनप्रतिनिधि के रूप में कार्य आदि को सिलसिलेवार तरीके से प्रस्तुत किया गया है।

पृ. 236; रु. 250.00

इंकलाब 1857

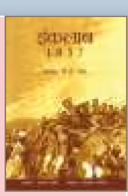

संपादन : **पी.सी. जोशी**

अनुवाद : **हीरालाल कर्नावट**

भारत की आजादी की पहली लड़ाई के नाम से मशहूर 1857 के विद्रोह को आधुनिक भारत के राजनीतिक इतिहास का महत्वपूर्ण पड़ाव कहा जाता है। यह पुस्तक 1857 के विद्रोह की परिस्थितियों, उस समय के राज, समाज और विश्व की घटनाओं, विद्रोह का राष्ट्रीय साहित्य पर प्रभाव, लोकगाथाओं में विद्रोह के वीर, जैसे कई विषयों पर प्रकाश डालती है।

पृ. 332; रु. 240.00

जलियाँवाला बाग : 13 अप्रैल 1919

रश्मि कुमारी

सन् 1919 में घटित जलियाँवाला बाग हत्याकांड के 100 साल पूरे होने के उपलक्ष्य में लेखिका ने यह पुस्तक लिखी है। इसमें 1857 से 1915 तक के स्वतंत्रता आंदोलन की पृष्ठभूमि, रॉलेट बिल, भारत में गांधी जी की भूमिका, जलियाँवाला बाग हत्याकांड व उसके शहीदों की सूची के बारे में विस्तार से बताया गया है।

पृ. 130; रु. 165.00

1857 : क्रांति और क्रांतिधरा

ए.के. गाँधी

यह पुस्तक 1857 की क्रांति के प्रारंभ स्थल मेरठ व उसके आस-पास क्रांति के लिए बने माहौल, वहाँ के आम लोगों की अंग्रेजों को भगाने में भूमिका, क्रांति के असफल होने के बाद वहाँ के लोगों पर हुए अत्याचार आदि के खुलासे का प्रामाणिक दस्तावेज है।

पृ. 100; रु. 130.00

ग़दर आंदोलन

संक्षिप्त इतिहास

हरीश के. पुरी

अनुवाद : **प्रकाश दीक्षित**

उत्तर अमेरिका में बसे प्रवासी सिख कामगारों और लाला हरदयाल द्वारा सन् 1913 में शुरू किया गया ग़दर आंदोलन भारत की स्वाधीनता का अद्भुत संघर्ष है। इस पुस्तक में ग़दर आंदोलन के संघर्ष का जीवंत चित्रण किया गया है।

पृ. 160; रु. 150.00

nbt.india
एकः सूते सकलम्

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत

शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार

5 इंस्टीट्यूशनल एरिया, वसंत कुंज, नई दिल्ली-110070

फोन : 011-26707761 ● **ई-मेल :** nro.nbt@nic.in

वेबसाइट : www.nbtindia.gov.in